समरथ

सितंबर-अक्टूबर 2013 ◆ नई दिल्ली

कुशल और
बे रोक-टोक प्रचार
लोगों को
मज़बूर कर देता है
कि वे स्वर्ग को
नर्क के रूप में देखें
या हर बुरी तरह से
कष्टदायक जीवन को भी
स्वर्ग समझ लें।

-एडोल्फ हिटलर

नाहि तो जनम नसाई

दिशाहीनता, भ्रम की स्थिति, नेतृत्व का अभाव, आर्थिक संकट और राष्ट्रवाद का उमड़ता सैलाब फासीवाद की दस्तक का संकेत है। यह सारी बातें अभी हमारे मुल्क में साफ तौर पर देखी जा सकती हैं। दिल्ली के चुनाव इसका सबसे बड़ा सबूत हैं। एक नई नवेली पार्टी जिसकी कोई विचारधारा सामने न आई हो और केवल कुछ ज्वलंत मुद्दों को लेकर घोर अराजनैतिक लोगों को उम्मीदवारी देकर बड़ी संख्या में मत पाए तो इसे आम जनता की राजनैतिक मुख्यधारा से खिन्नता के रूप में देखा जाना चाहिए। जब किसी देश की जनता किसी भी विचारधारा के साथ चलने से इन्कार कर दे तो मान लेना चाहिए कि देश बहुत बड़े राजनैतिक संकट से गुजर रहा है। मान लेना चाहिए कि देश के अंदर राजनैतिक बिखराव के बीज अंकुरित होने लगे हैं। कैसे संभव है कि बिना भविष्य की राजनीति की दिशा तय किये हुए, बिना व्यापक मुद्दों को हाथ लगाए चंद अराजनैतिक लोगों का दल आम आदमी को आकर्षित कर ले। यह राजनीतिक विचारधारा की पराजय है और जब भी राजनीतिक विचारधराओं की पराजय हुई है तब फासीवाद की विजय हुई है। इटली से लेकर जर्मनी तक और पूर्वी यूरोप में पनपने वाली फासीवादी विचारधारा ने ऐसे ही संकट को अपने पक्ष में इस्तेमाल किया। 1929 से 1933 का आर्थिक संकट फासीवाद के उदय का एक बड़ा कारण था। ऐसा ही संकट आज हमारे समक्ष भी देखा जा रहा है। ऐसे ही दौर में राष्ट्रवाद का नारा लोगों को आकर्षित करता है और राष्ट्रवाद के गर्भ में होती है एक बेहद खतरनाक विचारधारा। जो किसी खतरनाक अधिनायक को अपना नेता मान लेती है। पिछले कुछ महीनों से यही स्थिति अपने देश में भी देखी जा रही है। कत्लेआम का मुज़रिम सबसे बड़े विकल्प के रूप में हमारे सामने पेश किया जा रहा है लेकिन न तो हिटलर ही ठहर सका था और न मुसोलिनी। आज यह नाम नफरत से लिए जाते हैं। सिवा उन हलकों में छोड़कर जो हिटलर को आदर्श मानते हैं। गुरु गोलवलकर ने हिटलर को आदर्श बना ही दिया। मगर वक्त ऐसे मुजरिमों और तानाशाहों को उनकी औकात बता देता है। इससे पहले कि हिटलरी कदम हमारे मुल्क में कब्जा कर सकें, हमें चेतना होगा और फासीवाद की दस्तक का मुंह मोड़ना होगा।

तानाशाह की मौत का बिस्तर

■ **कॉनर जे.**

रौशनी चीरेगी बादल को तो चिल्लाएगा वह
जो ज़हर उगला था खुद उनको ही झुठलाएगा वह
खुद को बतलायेगा उसने न किया कोई गुनाह
जो हुआ उसमें वह शामिल ही नहीं था किसी जा
पर जो यह वक्त है ताक़त का समंदर ठहरा
उसकी यादों को झिंझोड़ेगा कि तू कातिल है
जो लगे घाव वह मिटने के नहीं गहरे हैं
और जो जुल्म है उसमें भी दबी हैं परतें
हवस और जुल्म है बदकारी की बातें हैं सभी
सारे किस्सों का ज़खीरा है जो रुकता ही नहीं
रौशनी डूबी तो बदज़ात के कारिंदे सभी
फैली तारीकी में लेते हैं हर एक जगह पनाह

तानाशाह सहमा सा खुद ढूंढ़ता है अपनी पनाह
खुद पिघलता है उसी कफ़न में जो ओढ़ा उसने
तेज़ बढ़ती है तपिश जितना सिमटता उसमें
पर जो सूरज का कहर बढ़ता है, रुकता कब है
सारे पंखों को जलाता है चमकता जब है
और नथुनों में तानाशाह के रफ़्ता रफ़्ता
उसके ही गोश्त के जलने की महक भरता है
रूह में डूबे गुनाहों को खुरच देता है
आओ स्वागत है तुम्हारा यहाँ तुम आ पहुंचे
कि जहां सोचोगे ए काश न ज़िंदा होते
तानाशाह हाथ उठाता है खुदा की जानिब
और खुदा बोल चुका सुनने को कुछ है भी नहीं

अनुवाद : डॉ. खुर्शीद अनवर

नरेन्द्र मोदी के नाम शम्सुल इस्लाम का खुला पत्र

श्रीमान!

आशा है आप स्वस्थ होंगे। बीती 22 जुलाई को यूरोपीय न्यूज़ एजेंसी रयूटर्स के दो पत्रकारों, रॉस कोल्विन तथा गोत्तिपति के साथ बात करते हुए आपने स्वयं को "'हिंदू राष्ट्रवादी'" घोषित किया और आप में एक देशभक्त होने की भावना संचार करने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का शुक्रिया अदा किया। यह आर. एस.एस. का प्रशिक्षण है कि - "आप जो भी काम करते हैं, आपको लगता है कि आप देश की भलाई के लिए यह कर रहे हैं? यह बुनियादी प्रशिक्षण है। अन्य बुनियादी प्रशिक्षण अनुशासन है। आपके जीवन को अनुशासित होना चाहिए।"

न्यूज़ एजेंसी का दावा है कि यह आपके आधिकारिक गांधीनगर निवास पर लिया गया एक 'दुर्लभ साक्षात्कार' है। इस साक्षात्कार को पढ़ कर मैं हैरान रह गया क्योंकि आप एक साधारण भारतीय नागरिक की हैसियत से नहीं बल्कि भारत के लोकतांत्रिक-धर्मनिरपेक्ष संविधान के अंतर्गत आने वाले गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में बात कर रहे थे। चूंकि आप पारदर्शिता में विश्वास रखने का दावा करते हैं इसलिए मैं इस आशा के साथ यह खुला खत लिख रहा हूं कि आप मेरे द्वारा उठाए गए सवालों के उत्तर अवश्य देंगे।

आर.एस.एस. के एक परिपक्व प्रचारक और पूर्णकालिक कार्यकर्ता होने के नाते आप अपनी जड़ों के बारे में मुझ से बेहतर जानते होंगे। मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूंगा कि 'हिंदू राष्ट्रवादी' शब्द की उत्पत्ति ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान एक ऐतिहासिक संदर्भ में हुई।

यह स्वतंत्रता संग्राम मुख्य रूप से एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में लड़ा गया था। 'मुस्लिम राष्ट्रवादियों' ने मुस्लिम लीग के बैनर तले और 'हिंदू राष्ट्रवादियों' ने 'हिंदू महासभा' और 'आर.एस.एस.' के बैनर तले इस स्वतंत्रता संग्राम का यह कहकर विरोध किया कि हिंदू और मुस्लिम दो पृथक् राष्ट्र हैं। स्वतंत्रता संग्राम को विफल करने के लिए इन हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रवादियों ने अपने औपनिवेशिक आकाओं से हाथ मिला लिया ताकि वे अपनी पसंद के धार्मिक राज्य 'हिंदुस्थान' या 'हिंदू राष्ट्र' और पाकिस्तान या इस्लामी राष्ट्र हासिल कर सकें।

भारत को विभाजित करने में मुस्लिम लीग की भूमिका और इसकी राजनीति के विषय में लोग अच्छी तरह परिचित हैं लेकिन मुझे लगता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और स्वतंत्रता संग्राम के दौरान 'हिंदू राष्ट्रवादियों' ने कैसा घटिया और कुटिल रोल अदा किया इसके विषय में आपकी याददाशत को ताज़ा करना जरूरी है।

नरेंद्र जी! 'हिंदू राष्ट्रवादी' मुस्लिम लीग की तरह ही द्विराष्ट्र सिद्धांत में यकीन रखते हैं। मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा कि हिन्दुत्व के जन्मदाता, वी. डी. सावरकर और आर.एस.एस. दोनों की द्विराष्ट्र सिद्धांत में साफ-साफ समझ में आने वाली आस्था रही है कि हिंदू और मुस्लिम दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। मुहम्मद अली जिन्नाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने 1940 में भारत के मुसलमानों के लिए पाकिस्तान की शक्ल में पृथक होमलैण्ड की मांग का प्रस्ताव पारित किया था, लेकिन सावरकर ने तो उससे काफी पहले, 1937 में ही जब वे अहमदाबाद में हिंदू महासभा के 19वें अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण कर रहे थे, तभी उन्होंने घोषणा कर दी थी कि हिंदू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्र हैं।

"फ़िलहाल भारत में दो प्रतिद्वंदी राष्ट्र अगल बग़ल रह रहे हैं। कई अपरिपक्व राजनीतिज्ञ यह मान कर गंभीर ग़लती कर बैठते हैं कि हिन्दुस्तान पहले से ही एक सद्भावपूर्ण राष्ट्र के रूप में ढल गया है या केवल हमारी इच्छा होने से इस रूप में ढल जाएगा। इस प्रकार के हमारे नेक नीयत वाले पर कच्ची सोच वाले दोस्त मात्र सपनों को सच्चाई में बदलना चाहते हैं। इसलिए वे सांप्रदायिक उलझनों से अधीर हो उठते हैं और इसके लिए सांप्रदायिक संगठनों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। लेकिन ठोस तथ्य यह है कि तथाकथित सांप्रदायिक प्रश्न और कुछ नहीं बल्कि सैकड़ों सालों से हिंदू और मुसलमान के बीच सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय प्रतिद्वंदिता के नतीजे में हम तक पहुंचे हैं। हमें अप्रिय इन तथ्यों का हिम्मत के साथ सामना करना चाहिए। आज यह क़त्तई नहीं माना जा सकता कि हिन्दुस्तान एकता में पिरोया हुआ राष्ट्र है, इसके विपरीत हिन्दुस्तान में मुख्यतः दो राष्ट्र हैं, हिंदू और मुसलमान।"

श्रीमान! आर.एस.एस. ने हमेशा 'वीर' सावरकर के पद चिन्हों पर चलते हुए इस विचार को खारिज किया कि हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाईयों ने मिलकर एक साथ एक राष्ट्र का गठन किया है। आजादी की पूर्व संध्या (14 अगस्त 1947) पर

प्रकाशित आर.एस.एस. के अंग्रेजी के मुखपत्र 'ऑर्गनाइजर' में 'किधर' (Whither) शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय में एक बार पुनः द्विराष्ट्र सिद्धांत में इन शब्दों में विश्वास व्यक्त किया है।

"राष्ट्रत्व की छद्म धारणाओं से गुमराह होने से हमें बचना चाहिये। बहुत सारे दिमाग़ी विभ्रम और वर्तमान एवं भविष्य की परेशानियों को दूर किया जा सकता है अगर हम इस आसान तथ्य को स्वीकारें कि हिन्दुस्तान में सिर्फ़ हिन्दू ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं और राष्ट्र का ढांचा उसी सुरक्षित और उपयुक्त बुनियाद पर खड़ा किया जाना चाहिए। स्वयं राष्ट्र को हिन्दुओं द्वारा हिन्दू परम्पराओं, संस्कृति, विचारों और आकांक्षाओं के आधार पर ही गठित किया जाना चाहिये।"

'मेरा सेक्युलरिज्म, इण्डिया फर्स्ट' वाला आपका दावा भी समस्यामूलक है। आप स्वयं को 'भारतीय राष्ट्रवादी' नहीं बल्कि 'हिंदू राष्ट्रवादी' मानते हैं। यदि आप 'हिंदू राष्ट्रवादी' हैं, तो निश्चित रूप से फिर तो देश में 'मुस्लिम राष्ट्रवादी', 'सिख राष्ट्रवादी', 'ईसाई राष्ट्रवादी' एवं अन्य 'राष्ट्रवादी' भी होंगे। इस प्रकार आप भारत विभाजन के लिए जमीन तैयार कर रहे हैं। निश्चित रूप से यह आपके संगठन की द्विराष्ट्र सिद्धान्त में अखण्ड विश्वास के कारण है।

'हिंदू राष्ट्रवादी' राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे की निंदा व अपमान करते हैं।

श्रीमान मोदी जी! आर.एस.एस. के एक वरिष्ठ और पूर्णकालिक कार्यकर्ता होने के नाते आप अच्छी तरह जानते होंगे कि आर.एस.एस. के मुखपत्र 'ऑर्गनाइजर' ने स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्व संध्या पर राष्ट्रीय ध्वज के लिए इस भाषा का प्रयोग किया था - "वे लोग जो किस्मत के दांव से सत्ता तक पहुंचे हैं वे भले ही हमारे हाथों में तिरंगे को थमा दें, लेकिन हिंदुओं द्वारा न इसे कभी सम्मानित किया जा सकेगा न अपनाया जा सकेगा। तीन का आंकड़ा अपने आप में अशुभ है और एक ऐसा झण्डा जिसमें तीन रंग हों बेहद खराब मनोवैज्ञानिक असर डालेगा और देश के लिए नुकसानदेय होगा।"

'हिंदू राष्ट्रवादियों' ने 1942-43 में मुस्लिम लीग के साथ मिलकर गठबंधन सरकारें चलाई।

सन् 1942 भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण वर्ष है। अंग्रेजों के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी आह्वान "अंग्रेज़ों भारत छोड़ो" किया गया था। इसके प्रत्युत्तर में ब्रिटिश शासकों ने देश को नरक में बदल दिया था। ब्रिटिश सशस्त्र दस्तों ने पूरी तरह से कानून के शासन की अनदेखी करते हुए बड़े पैमाने पर आम भारतीयों को मार डाला। लाखों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया और हजारों को भयानक दमन व यातना का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रांतों में शासन कर रही कांग्रेसी सरकारें बर्खास्त कर दी गईं। केवल हिंदू महासभा और मुस्लिम लीग ही ऐसे राजनैतिक संगठन थे जिनको अपना कार्य जारी रखने की अनुमति दी गई। इन दोनों संगठनों ने न केवल ब्रिटिश शासकों की सेवा की बल्कि मिलकर गठबंधन सरकारें भी चलाईं। आर.एस.एस. के महाप्रभु 'वीर' सावरकर ने 1942 में कानपुर में हिंदू महासभा के 24वें महाधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में इसकी पुष्टि की कि "व्यावहारिक राजनीति में भी हिन्दू महासभा जानती है कि हमें तर्कसंगत समझौते करके आगे बढ़ना चाहिए। इस तथ्य पर ध्यान दीजिए कि हाल ही में सिंध हिन्दू महासभा ने निमंत्रण के बाद मुस्लिम लीग के साथ मिली जुली सरकारें चलाने की जिम्मेदारी ली। बंगाल का मामला सर्वविदित है। उद्दंड लीगियों (मुस्लिम लीग के सदस्य) को कांग्रेस भी अपने दब्बूपन के बावजूद खुश नहीं रख सकी, लेकिन जब वे हिंदू महासभा के संपर्क में आए तो काफ़ी तर्कसंगत समझौतों और सामाजिक व्यवहार के लिए तैयार हो गये, और श्री फज़लुल हक़ के प्रधानमंत्रित्व (उन दिनों मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री ही कहा जाता था) और हिन्दू महासभा के क़ाबिल व सम्मान्य नेता डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के काबिल नेतृत्व में ये सरकार दोनों सम्प्रदायों के फ़ायदे के लिए एक साल से भी ज्यादा चली। और हमारे सम्मानित महासभा नेता डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और यह सरकार करीब़ एक साल तक दोनों समुदायों के हित में सफलतापूर्वक चली।"

जब नेताजी सुभाष चन्द्र बोस देश को आज़ाद कराने के लिए लड़ रहे थे तब 'हिंदू राष्ट्रवादी' ब्रिटिश हुकूमत और ब्रिटिश सेना को ताकतवर बनाने में मदद कर रहे थे।

श्रीमान! मैं समझता हूँ कि आप नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नाम से ज़रूर परिचित होंगे जिन्होंने जर्मनी और जापान के सैन्य सहयोग से भारत को मुक्त कराने का प्रयास किया था। लेकिन, इस अवधि के दौरान 'हिंदू राष्ट्रवादियों' ने बजाय नेताजी को मदद करने के, नेताजी के मुक्ति संघर्ष को हराने में ब्रिटिश शासकों के हाथ मजबूत किए। हिंदू महासभा ने 'वीर' सावरकर के नेतृत्व में ब्रिटिश फौजों में भर्ती के लिए शिविर लगाए। हिंदुत्ववादियों ने अंग्रेज शासकों के समक्ष मुकम्मल समर्पण कर दिया था जो 'वीर' सावरकर के निम्न वक्तव्य से और भी साफ हो जाता है- "जहाँ तक भारत की सुरक्षा का सवाल है, हिंदू समाज को भारत सरकार के युद्ध संबंधी प्रयासों में सहानुभूतिपूर्ण सहयोग की भावना से बेहिचक जुड़ जाना चाहिए जब तक यह हिंदू हितों के फ़ायदे में हो। हिंदुओं को बड़ी संख्या में थल सेना, नौसेना और वायुसेना में शामिल होना चाहिए और सभी आयुध, गोला-बारूद, और जंग का सामान बनाने वाले कारख़ानों वग़ैरह में प्रवेश करना चाहिए। ग़ौरतलब है कि युद्ध में जापान के कूदने के कारण हम ब्रिटेन के शत्रुओं के हमलों के सीधे निशाने पर आ गए हैं। इसलिए हम चाहें या न चाहें, हमें युद्ध के क़हर से अपने परिवार और घर को बचाना है और यह भारत की सुरक्षा के सरकारी युद्ध प्रयासों को ताक़त पहुंचा कर ही किया जा सकता है। इसलिए हिंदू महासभाइयों

को ख़ासकर बंगाल और असम के प्रांतों में, जितना असरदार तरीक़े से संभव हो, हिंदुओं को अविलंब सेनाओं में भर्ती होने के लिए प्रेरित करना चाहिए।"

आर.एस.एस. अपने कार्यकर्ताओं में कैसी भावना भरता है?

श्रीमान! आपने अपने साक्षात्कार में दावा किया कि आर. एस.एस. अपने कार्यकर्ताओं के मन में देशभक्ति की भावना, राष्ट्र की भलाई के लिए काम करना और अनुशासन की भावना भरता है। जब से आरएसएस 'हिंदू राष्ट्र' के लिए खड़ा हुआ है कोई साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है कि आर.एस.एस. के हाथों लोकतांत्रिक-धर्मनिरपेक्ष भारत का क्या भविष्य हो सकता है। आपको संघ के प्रमुख विचारक गोलवलकर के उस वक्तव्य को भी साझा करना चाहिए कि आर.एस.एस. एक स्वयंसेवक से क्या अपेक्षाएं करता है। 16 मार्च 1954 को सिंदी (वर्धा) में संघ के शीर्ष नेतृत्व को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था "यदि हमने कहा कि हम संगठन के अंग हैं, हम उसका अनुशासन मानते हैं तो फिर 'सिलेक्टीवनेस' (पसंद) का जीवन में कोई स्थान न हो। जो कहा वही करना। कबड्डी कहा तो कबड्डी; बैठक कहा तो बैठक जैसे अपने कुछ मित्रों से कहा कि राजनीति में जाकर काम करो, तो उसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें इसके लिए बड़ी रुचि या प्रेरणा है। वे राजनीतिक कार्य के लिए इस प्रकार नहीं तड़पते, जैसे बिना पानी के मछली। यदि उन्हें राजनीति से वापिस आने को कहा तो भी उसमें कोई आपत्ति नहीं। अपने विवेक की कोई ज़रूरत नहीं। जो काम सौंपा गया उसकी योग्यता प्राप्त करेंगे ऐसा निश्चय कर के यह लोग चलते हैं।"

गुरु गोलवलकर का दूसरा वक्तव्य भी इस बारे में महत्वपूर्ण है।

"हमें यह भी मालूम है, कि अपने कुछ स्वयं सेवक राजनीति में काम करते हैं। वहां उन्हें उस कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप जलसे, जुलूस आदि करने पड़ते हैं, नारे लगाने होते हैं। इन सब बातों का हमारे काम में कोई स्थान नहीं है। परन्तु नाटक के पात्र के समान जो भूमिका ली उसका योग्यता से निर्वाह तो करना ही चाहिए। पर इस नट की भूमिका से आगे बढ़कर काम करते-करते कभी-कभी लोगों के मन में उसका अभिनिवेश उत्पन्न हो जाता है। यहां तक कि फिर इस कार्य में आने के लिए वे अपात्र सिद्ध हो जाते हैं। यह तो ठीक नहीं है। अतः हमें अपने संयमपूर्ण कार्य की दृढ़ता का भलीभांति ध्यान रखना होगा। आवश्यकता हुई तो हम आकाश तक भी उछल-कूद कर सकते हैं, परन्तु दक्ष दिया तो दक्ष में ही खड़े होंगे।"

श्रीमान मोदी!

यहां हम देखते हैं कि गोलवलकर संघ के राजनैतिक जेबी संगठनों को उधार दिए गए स्वयंसेवकों को एक 'नट' या 'अभिनेता' की संज्ञा देते हैं जो आर.एस.एस. की थाप पर नृत्य करे। यहां यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि गोलवलकर ने अपने राजनीतिक संगठन को नियंत्रित करने का उपरोक्त डिजाइन मार्च 1960 में भारतीय जनसंघ (भाजपा का पूर्व स्वरूप) के गठन के लगभग नौ साल बाद व्यक्त किया था। मैं आपसे जानना चाहता हूं कि आप भारत की लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राजनीति कर रहे हैं या आप एक "नट" मात्र हैं जो भारत को एक धार्मिक राज्य में बदलने का संघ का एक हथियार मात्र है। सत्यता यह है कि संघ अपने स्वयंसेवकों को रीढ़विहीन बनाता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम से आर.एस.एस. की गद्दारी।

श्रीमान! दस्तावेजों में दर्ज आर.एस.एस. के इतिहास को देखते हुए आपका यह दावा संदेहास्पद है कि आर.एस.एस. ने आपको देशभक्ति का पाठ पढ़ाया। मैं आपके ध्यानार्थ कुछ तथ्य रखना चाहूंगा। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान 'असहयोग आन्दोलन' एवं 'भारत छोड़ो आन्दोलन' मील के दो पत्थर हैं। और यहां इन दो महत्वपूर्ण घटनाओं पर महान गोलवलकर की महान थीसिस है- "संघर्ष के बुरे परिणाम हुआ ही करते हैं। 1920-21 के आन्दोलन के बाद लड़कों ने उद्दण्ड होना प्रारम्भ किया, यह नेताओं पर कीचड़ उछालने का प्रयास नहीं है। परन्तु संघर्ष के उत्पन्न होने वाले ये अनिवार्य परिणाम हैं। बात इतनी ही है कि इन परिणामों को काबू में रखने के लिये हम ठीक व्यवस्था नहीं कर पाये। सन् 1942 के बाद तो क़ानून का विचार करने की ही आवश्यकता नहीं, ऐसा प्रायः लोग सोचने लगे।"

इस तरह गुरु गोलवलकर यह चाहते थे कि हिंदुस्तानी अंग्रेज शासकों द्वारा थोपे गए दमनकारी और तानाशाही कानूनों का सम्मान करें! सन् 1942 के आंदोलन के बाद उन्होंने फिर स्वीकारा-

"सन् 1942 में भी अनेकों के मन में तीव्र आंदोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया। परन्तु संघ के स्वयं सेवकों के मन में उथल-पुथल चल ही रही थी। संघ यह अकर्मण्य लोगों की संस्था है, इनकी बातों में कुछ अर्थ नहीं, ऐसा केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं, कई अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वे बड़े रुष्ट भी हुए।"

श्रीमान! हमें बताया गया है कि संघ ने सीधे कुछ नहीं किया। हालांकि, एक भी प्रकाशन या दस्तावेज ऐसा उपलब्ध नहीं है जो यह प्रकाश डाल सके कि आर.एस.एस. ने भारत छोड़ो आंदोलन के लिए परोक्ष रूप से क्या काम किया। वस्तुतः संघ के प्रश्रयदाता "वीर" सावरकर ने इस दौरान मुस्लिम लीग के साथ गठबंधन सरकारें चलाईं। दरअसल आर.एस.एस. ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत छोड़ो आंदोलन के समर्थन में कुछ भी नहीं किया बल्कि वास्तव में, उसने इस आंदोलन जो एक महान आंदोलन था, के खिलाफ ही काम किया जो आपके और आपके शुभचिंतकों के लिए देशभक्ति के विपरीत था।

आर.एस.एस. स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों का अपमान करता है।

श्रीमान! मोदी जी, मैं गुरुजी के उस वक्तव्य पर आपकी राय

जानना चाहूंगा जो भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद और अशफ़ाक़ उल्लाह खाँ के बलिदान का अपमान करता है। यहां संघ कार्यकर्ताओं और आपके लिए गीता के समान सत्य "बंच ऑफ थॉट्स" से "बलिदान महान लेकिन आदर्श नहीं" (Martyr Great But Not Ideal) का एक अंश पेश है-

"निःसंदेह ऐसे व्यक्ति जो अपने आप को बलिदान कर देते हैं श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और उनका जीवन दर्शन प्रमुखतः पौरुषपूर्ण है। वे सर्वसाधारण व्यक्तियों से, जो कि चुपचाप भाग्य के आगे समर्पण कर देते हैं और भयभीत और अकर्मण्य बने रहते हैं, बहुत ऊंचे हैं। फिर भी हमने ऐसे व्यक्तियों को समाज के सामने आदर्श के रूप में नहीं रखा है। हमने बलिदान को महानता का सर्वोच्च बिन्दु, जिसकी मनुष्य आकांक्षा करें, नहीं माना है। क्योंकि, अंततः वे अपना उद्देश्य प्राप्त करने में असफल हुए और असफलता का अर्थ है कि उनमें कोई गंभीर त्रुटि थी।"

श्रीमान! क्या इससे अधिक शहीदों के अपमान का कोई बयान हो सकता है? जबकि आर.एस.एस. के संस्थापक डॉ. हेडगेवार तो और एक कदम आगे चले गये।

''कारागार में जाना ही कोई देशभक्ति नहीं है। ऐसी छिछोरी देशभक्ति में बहना उचित नहीं है।"

श्रीमान! क्या आपको नहीं लगता कि अगर शहीद भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, अशफाक उल्लाह खाँ, चंद्रशेखर आज़ाद तत्कालीन संघ नेतृत्व के सम्पर्क में आ गये होते तो उन्हें 'छिछोरी देशभक्ति' के लिए जान देने से बचाया जा सकता था? यकीनन, यही कारण था कि ब्रिटिश शासन के दौरान आर.एस.एस. के नेताओं व कार्यकर्ताओं को किसी भी सरकारी दमन का सामना नहीं करना पड़ा। और संघ ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कोई शहीद पैदा नहीं किया। श्रीमान! क्या हम 'वीर' सावरकर द्वारा अंग्रेज सरकार को लिखे गये चापलूसी भरे माफीनामों को सच्ची देशभक्ति मानें?

आर.एस.एस. लोकतंत्र से घृणा करता है।

मोदी जी! गुजरात के मुख्यमंत्री और भाजपा के प्रमुख नेता के रूप में आपसे आशा की जाती है कि आप भारत की लोकतांत्रिक-धर्मनिरपेक्ष नीति के अंतर्गत काम करें। लेकिन गुरु गोलवलकर के उस आदेश पर आपका क्या रुख है, जो उन्होंने 1940 में संघ के 1350 प्रमुख स्वयंसेवकों के समूह को संबोधित करते हुए दिया था। उनके अनुसार "एक ध्वज के नीचे, एक नेता के मार्गदर्शन में, एक ही विचार से अनुप्राणित होकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिंदुत्व की प्रखर ज्योति इस विशाल भूमि के कोने-कोने में प्रज्जवलित कर रहा है।"

मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, 'एक झण्डा, एक नेता, एक विचारधारा' यूरोप की फासिस्ट और नाज़ी पार्टियों का नारा था। सारा विश्व जानता है कि उन्होंने प्रजातंत्र के साथ क्या किया।

आर.एस.एस. संघीय व्यवस्था के विरुद्ध

आर.एस.एस. संविधान में दिए गए संघीय व्यवस्था, जो भारतीय संवैधानिक ढांचे का एक मूल सिद्धांत है, के एकदम खिलाफ है। यह 1961 में गुरु गोलवलकर द्वारा राष्ट्रीय एकता परिषद के प्रथम सम्मेलन को भेजे गए पत्र से स्पष्ट है। इसमें साफ लिखा था "आज की संघात्मक (फेडरल) राज्य पद्धति पृथकता की भावनाओं का निर्माण तथा पोषण करने वाली, एक राष्ट्र भाव के सत्य को एक प्रकार से अमान्य करने वाली एवं विच्छेद करने वाली है। इसको जड़ से ही हटा कर तदनुसार संविधान शुद्ध कर एकात्मक शासन प्रस्थापित हो।"

'हिंदू राष्ट्रवादी', जातिवाद और स्त्री विरोधी नीतियों के हामी हैं।

यदि आप आर.एस.एस. और इसके बगलबच्चा संगठन, जो भारत में हिन्दुत्व का शासन चाहते हैं, के अभिलेखों में झांक कर देखें तो तत्काल स्पष्ट हो जाएगा कि वे सब के सब डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में प्रारूपित संविधान से घृणा करते हैं। जब भारत की संविधान सभा ने भारतीय संविधान को अंतिम रूप दिया तो आर. एस.एस. खुश नहीं था। 30 नवंबर 1949 के संपादकीय में इसका मुखपत्र 'ऑर्गनाइज़र' शिकायत करता है कि "हमारे संविधान में प्राचीन भारत में विलक्षण संवैधानिक विकास का कोई उल्लेख नहीं है। मनु की विधि स्पार्टा के लाइकरगुस या पर्सिया के सोलोन के बहुत पहले लिखी गयी थी। आज तक इस विधि की जो 'मनुस्मृति' में उल्लिखित है, विश्वभर में सराहना की जाती रही है और यह स्वतःस्फूर्त धार्मिक नियम-पालन तथा समानुरूपता पैदा करती है। लेकिन हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए उसका कोई अर्थ नहीं है।"

वास्तव में आर.एस.एस. 'वीर' सावरकर द्वारा निर्धारित विचारधारा का पालन करता है। श्रीमान! जी आपके लिए यह कोई राज़ नहीं है कि 'वीर' सावरकर अपने पूरे जीवन में जातिवाद और मनुस्मृति की पूजा के एक बड़े प्रस्तावक बने रहे। 'हिंदू राष्ट्रवाद' की इस प्रेरणा के अनुसार : "मनुस्मृति एक ऐसा धर्मग्रंथ है जो हमारे हिन्दू राष्ट्र के लिए वेदों के बाद सर्वाधिक पूजनीय है और जो प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति रीति-रिवाज, विचार तथा आचरण का आधार हो गया है। सदियों से इस पुस्तक ने हमारे राष्ट्र के आध्यात्मिक एवं दैविक अभियान को संहिताबद्ध किया है। आज भी करोड़ों हिन्दू अपने जीवन तथा आचरण में जिन नियमों का पालन करते हैं, वे मनुस्मृति पर आधारित हैं। आज मनुस्मृति हिन्दू विधि है।"

हिंदुत्व के एक महान ध्वजवाहक के रूप में आपको पता ही होगा 'हिंदू राष्ट्रवादी' किस प्रकार का समाज बनाना चाहता है। चूंकि आप बहुत व्यस्त हैं इसलिए मैं दलितों, अछूतों एवं स्त्रियों के लिए मनुस्मृति से उनके निर्देश उद्धत कर दे रहा हूं। इसमें निर्देशित अमानवीय और पतित नियम स्वतः स्पष्ट हैं।

दलितों एवं अछूतों के लिए मनु के सिद्धांत

अनादि ब्रह्म ने लोक कल्याण एवं समृद्धि के लिए अपने मुख, बांह, जांघ तथा चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों को उत्पन्न किया।

भगवान ने शूद्र वर्ण के लोगों के लिए एक ही कर्तव्य-कर्म निर्धारित किया है- तीनों अन्य वर्णों की निर्विकार भाव से सेवा करना।

शूद्र यदि द्विजातियों- ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को गाली देता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिए क्योंकि नीच जाति का होने से वह इसी सज़ा का अधिकारी है।

शूद्र द्वारा अहंकारवश उपेक्षा से द्विजातियों के नाम एवं जाति उच्चारण करने पर उसके मुंह में दस उंगली लोहे की जलती कील ठोक देनी चाहिए।

शूद्र द्वारा अहंकारवश ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देने का दुस्साहस करने पर राजा को उसके मुंह एवं कान में गरम तेल डाल देना चाहिए।

यदि वह द्विजाति के किसी व्यक्ति पर जिस अंग से प्रहार करता है, उसका वह अंग काट डाला जाना चाहिए, यही मनु की शिक्षा है।

यदि लाठी उठाकर आक्रमण करता है तो उसका हाथ काट डालना चाहिए और यदि वह क्रुद्ध होकर पैर से प्रहार करता है तो उसका पैर काट डालना चाहिए।

उच्च वर्ग के लोगों के साथ बैठने की इच्छा रखने वाले शूद्र की कमर को दाग करके उसे वहां से निकाल भगाना चाहिए अथवा उसके नितम्ब को इस तरह से कटवा देना चाहिए जिससे वह न मरे और न जिये।

एक ब्राह्मण का वध अथवा पिटाई नहीं करना चाहिए, भले ही उसने सभी संभव अपराध किए हों। अधिक से अधिक उसे अपने राज्य से निकाल देना चाहिए। ऐसा करते हुए सारा धन सौंप देना चाहिए तथा चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। (राजा को आदेश)

स्त्रियों से सम्बंधित मनु के नियम

पुरुषों को अपनी स्त्रियों को सदैव रात-दिन अपने वश में रखना चाहिए।

स्त्री की बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करते हैं, अर्थात् वह उनके अधीन रहती है और उसे अधीन ही बने रहना चाहिए; एक स्त्री कभी भी स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।

बिगड़ने के छोटे से अवसर से भी स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक और कठोरता से बचाना चाहिए, क्योंकि न बचाने से बिगड़ी स्त्रियां दोनों (पिता और पति के) कुलों को कलंकित करती हैं। (9/5)

सभी जातियों के लोगों के लिए स्त्री पर नियंत्रण रखना उत्तम धर्म के रूप में ज़रूरी है। यह देखकर दुर्बल पतियों को भी अपनी स्त्रियों को वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

कोई भी आदमी पूरी तरह से महिलाओं की रक्षा नहीं कर सकता है, लेकिन वे निम्न उपायों से ऐसा कर सकते हैं।

पति को अपनी पत्नी को अपनी संपत्ति के संवर्द्धन व संचयन, साफ सफाई, धार्मिक कर्तव्यों, खाना पकाने व घर के बरतनों की साफ सफाई में लगाना होगा।

विश्वस्त और आज्ञाकारी नौकरों के भरोसे स्त्रियों की सही सुरक्षा नहीं हो सकती लेकिन जो अपनी सुरक्षा स्वयं करती हैं वे ज्यादा सुरक्षित हैं।

ये स्त्रियां न तो पुरुष के रूप का और न ही उसकी आयु का विचार करती हैं। इन्हें तो केवल पुरुष के पुरुष होने से प्रयोजन है। चाहे वो कुरूप हो या सुंदर। यही कारण है कि पुरुष को पाते ही ये उससे भोग के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं चाहे वे कुरूप हों या सुंदर।

पुरुषों के प्रति अपनी चाह, परिवर्तनशील व्यवहार एवं अपनी स्वाभाविक हृदयहीनता के चलते स्त्रियां अपने पतियों के प्रति वेवफा हो जाती हैं चाहे उनकी कितनी भी सावधानीपूर्वक देखभाल की जाए।

मनु के अनुसार ब्रह्माजी ने निम्नलिखित प्रवृत्तियां सहज स्वभाव के रूप में स्त्रियों को दी हैं-उत्तम शैय्या और अलंकारों के उपभोग का मोह, काम-क्रोध, टेढ़ापन, ईर्ष्या द्रोह और घूमना-फिरना तथा सज-धजकर दूसरों को दिखाना।

स्त्रियों के जातकर्म एवं नामकर्म आदि संस्कारों में वेद मंत्रों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। यही शास्त्र की मर्यादा है क्योंकि स्त्रियों में ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग की क्षमता का अभाव (अर्थात् सही न देखने, सुनने, बोलने वाली) है।

मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि दिसंबर 1927 में, डॉ. बी.आर. अंबेडकर की उपस्थिति में ऐतिहासिक महाड़ आंदोलन के दौरान मनुस्मृति की प्रति विरोध-स्वरूप जलाई गई थी।

आर.एस.एस. के लिए जातिवाद 'हिंदू राष्ट्र' का समानार्थी है

श्रीमान! आर.एस.एस. के एक अनुशासित और प्रतिबद्ध कार्यकर्ता के नाते आप इस तथ्य से परिचित होंगे कि जातिवाद 'हिंदू राष्ट्र' का सार है। गुरु गोलवलकर ने तो यहां तक घोषणा की कि जातिवाद 'हिंदू राष्ट्र' का समानार्थी है। उनके अनुसार हिंदू और कोई नहीं बल्कि विराट पुरुष हैं, "विराट पुरुष, खुद प्रगट होने वाला परमेश्वर ('पुरुष सूक्त' के मुताबिक़) सूर्य और चंद्रमा उसकी आंखें हैं, तारे और आकाश उसकी नाभि से निर्मित होते हैं और ब्राह्मण उसका सर है, राजा हाथ है, वैश्य जांघ है और शूद्र पैर है। इसका अर्थ यही है कि वे लोग जिनके यहां इस किस्म की चार परत वाली व्यवस्था होती है अर्थात् हिन्दू लोग, वही हमारे भगवान हैं। ईश्वर के बारे में ऐसी सर्वोच्च धारणा ही 'राष्ट्र' की हमारी अवधारणा की अन्तर्वस्तु है और वह हमारे चिन्तन में छा गयी है और उसने हमारी सांस्कृतिक विरासत की विभिन्न अनोखी अवधारणाओं को जन्म दिया है।"

श्रीमान! कृपया मुझे बताने का कष्ट करें कि आप गुरुजी के

साथ हैं या उस लोकतांत्रिक-धर्मनिरपेक्ष राज्यव्यवस्था के साथ हैं जिसने आपको सत्तासीन किया है। यह बहुत गंभीर मसला है क्योंकि इसका संबंध दलितों और स्त्रियों के अधिकारों से है।

मुझे अफसोस है कि मेरा पत्र लम्बा होता जा रहा है। मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा करेंगे क्योंकि आपके रयूटर्स को दिए गए साक्षात्कार एवं अन्य कथनों एवं गतिविधियों के एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में मेरे पास और कोई विकल्प नहीं है। आप मेरी इस बात की प्रशंसा करेंगे कि मैं अन्य व्यक्तियों और संगठनों की तरह 2002 गुजरात जनसंहार का मुद्दा नहीं उठा रहा हूँ। मैं दृढ़तापूर्वक महसूस करता हूं कि मुझे केवल वे मामले उठाने चाहिएं जो सामान्यतः छोड़ दिए जाते हैं। आपका इस देश के हिंदुओं और वर्तमान लोकतांत्रिक-धर्मनिरपेक्ष राजव्यवस्था के लिए क्या एजेण्डा है इस पर प्रकाश डालें?

श्रीमान! मैं दो और मुद्दे उठाकर इसे समाप्त करुंगा।

'हिंदू राष्ट्रवादी' गांधी हत्या का जश्न मनाते हैं।

नाथूराम गोडसे और उनके सहयोगी जिन्होंने गांधी जी की हत्या करने का षडयन्त्र रचा, और उसे कार्यान्वित किया वे 'हिंदू राष्ट्रवादी' होने का दावा करते थे। उन्होंने गांधी हत्या को प्रभु के आदेशपालन के रूप में बयान किया। आर.एस.एस. ने मिठाई बांटकर गांधी जी की हत्या का जश्न मनाया। क्या उनका हिन्दुत्ववादियों द्वारा सम्मान नहीं किया जाता? क्या आप उनमें से एक नहीं हैं? जून 2013 में भाजपा की कार्यकारिणी समिति के लिए जब आप गोवा मे थे तब आपने हिंदू जनजागरण समिति द्वारा आयोजित हिंदू राष्ट्र की स्थापना के लिए अखिल भारतीय हिंदू सम्मेलन के लिए एक संदेश भेजा। जिसमें कहा गया : "यद्यपि प्रत्येक हिंदू ईश्वर के साथ प्रेम, दया, अंतरंगतापूर्वक व्यवहार करता है, अहिंसा, सत्य और सात्विकता को महत्व देते हुए राक्षसी प्रवृत्तियों को दूर करना हर हिंदू के भाग्य में है। उत्पीड़न के खिलाफ आवाज़ उठाना और उसके प्रति सतर्क रहना हमारी परंपरा है। हमारी संस्कृति की रक्षा करते हुए ही धर्म, ध्वजा व एकता को अखण्ड रखा जा सकता है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण से प्रेरित संगठन लोकशक्ति का सच्ची अभिव्यक्ति हैं।"

आपने हिंदू जनजागरण समिति को अच्छी तरह जानते हुए यह भ्रातृ संदेश भेजा होगा। जिस मंच से आपका बधाई संदेश पढ़ा गया उसी मंच से एक प्रमुख वक्ता, के. वी. सीतारमैया ने घोषणा की कि "गांधी भयानक दुष्कर्मी और सर्वाधिक पापी था।"

महात्मा गांधी की हत्या पर खुशी मनाते हुए उन्होंने यह तक कह डाला कि : "जैसा कि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे (दुष्टों के विनाश के लिए, अच्छों की रक्षा के लिए और धर्म की स्थापना के लिए, मैं हर युग में पैदा हुआ हूँ) 30 जनवरी 1948 की शाम, श्रीराम, नाथूराम गोडसे के रूप में आये और गांधी का जीवन समाप्त कर दिया।"

यहां यह बताना भी उचित रहेगा कि केवी सीतारमैया ने 'गांधी धर्मद्रोही एवं देशद्रोही' शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी है जिसमें पिछले कवर पृष्ठ पर महाकाव्य महाभारत को उद्धृत करते हुए मांग की गई है कि "धर्मद्रोही की हत्या की जानी चाहिए। हत्या के अधिकारी को नहीं मारना, मारने से बड़ा पाप है। और जहां संसद सदस्य स्पष्ट रूप से सत्य व धर्म की हत्या की अनुमति देते हैं उन्हें मरा हुआ होना चाहिए।"

श्रीमान! कृपया बताएं कि क्या यह उन संसद सदस्यों को खत्म करने का खुला आह्वान नहीं है जो लेखक की धर्म की परिभाषा से सहमत नहीं हैं।

नॉर्वे के नव नाजीवादी सामूहिक हत्यारे ब्रेविक ने 'हिंदू राष्ट्रवादियों' का महिमामंडन किया।

अंत में आप मुझे बताने का कष्ट करें कि आप किस प्रकार यूरोपीय देश नॉर्वे के नव-नाजीवादी सामूहिक हत्यारे एंडर्स बेहरिंग ब्रेविक का बयान, जिसने भारत के 'हिंदू राष्ट्रवादी' आंदोलन को विश्वभर में लोकतांत्रिक व्यवस्था को कुचलने के अभियान में प्रमुख सहयोगी करार दिया है, पर प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे। नॉर्वे में भयंकर जनसंहार करने से पहले उसने 1518 पृष्ठ का एक मेनीफेस्टो (घोषणापत्र) जारी किया जिसमें 102 पृष्ठों में भारत के हिन्दुत्ववादी आंदोलन की चर्चा और प्रशंसा की गई है। उसने सनातन धर्म आंदोलन एवं 'हिंदू राष्ट्रवादियों' का समर्थन किया है। यह मैनीफेस्टो यूरोप के नवनाजीवादियों और भारत के हिंदू राष्ट्रवादियों के बीच एक रणनीतिक सहयोग की रूपरेखा बताता है। यह मेनीफेस्टो कहता है कि यूरोप के नवनाजीवादियों और भारत के हिंदूराष्ट्रवादियों को "एक दूसरे से सीखना एवं जितना मुमकिन हो, सहयोग करना चाहिए" क्योंकि "दोनों के लक्ष्य कम या ज्यादा एक समान हैं।" इस मेनीफेस्टो में प्रमुख रूप से हिंदुत्ववादी संगठनों आर.एस.एस., भाजपा, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और विश्व हिंदू परिषद का उल्लेख किया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मेनीफेस्टो, मुसलमानों को देश से बाहर निकाल फेंकने के लिए गृह-युद्ध में और पश्चिम की समस्त बहुसांस्कृतिक सरकारों को उखाड़ फेंकने के लिए हिंदू राष्ट्रवादियों को, सैन्य सहायता का आश्वासन देता है। दरअसल वास्तव में मैं उन मुद्दों पर आपकी प्रतिक्रिया चाहता हूं जो रयूटर्स के पत्रकारों द्वारा उठाए जाने चाहिए थे।

मैं बहुत उत्सुकता के साथ आपके प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध विशाल संसाधनों के मद्देनज़र आपको उत्तर देने में कोई कष्ट नहीं होगा।

आपका

शम्सुल इस्लाम
17-07-2013
notoinjustice@gmail.com

दहशतगर्दी और साम्प्रदायिकता को मिल रही एक दूसरे से खुराक

■ डॉ. खुर्शीद अनवर

एक साम्प्रदायिकता किस तरह दूसरी साम्प्रदायिकता की सहयात्री और सहायक बनती है इसकी भूमिका एक बार फिर लिखी जानी शुरू हो चुकी है। जम्मू कश्मीर में आतंकवादी हमले, पाकिस्तान में वहाबियत का ताण्डव, मोदीनामा लिखा जा रहा है हिन्दुस्तान में और उसको मज़बूती दे रहे हैं अल-क़ायदा और उसके सहयोगी संगठन। जितना आतंकवाद बढ़ेगा उतनी ही मज़बूत होगी हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिकता की राजनीति।

जब भी पाकिस्तान की सीमा के अंदर आतंकवाद ज़ोर पकड़ता है, उसकी परछायी हिन्दुस्तान पर पड़ने लगती है। ईसाइयों पर हमला हो तो भी एक सोच मज़बूत होने लगती है कि क़ातिल हैं तो आखिर मुसलमान (जबकि यह सोच सिरे से गलत है क्योंकि सारे आतंकवादी संगठन वहाबी समुदाय से ताल्लुक़ रखते हैं बाकि किसी मुस्लिम समुदाय से नहीं), जो कि आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम दे रहे हैं। और जब यही संगठन भारत की सीमा में घुस कर खून बहाते हैं तो चाहे उसमें मुसलमान भी बराबर मारे जायें, सारे मुसलमान शक के दायरे में आते हैं और मौक़ा मिलता है, हिंदुत्व को अपना एजेंडा आगे बढ़ाने का।

गुजरात 2002 के जनसंहार का ही उदाहरण लें। किन परिस्थितियों में वह सब हुआ? एक अक्टूबर 2001 को जम्मू-कश्मीर विधानसभा भवन पर जैश-ए-मोहम्मद के आतंकी हमला करते हैं जिसमें अड़तीस हिन्दुस्तानी और चार आतंकी मारे जाते हैं। पूरे देश में रोष फैलने लगता है। आतंकवाद और इस्लाम को लगभग एक जैसा देखना शुरू कर दिया जाता है। यह तो जैसे भूमिका बन रही थी बड़े टकराव की। अमरीका के विश्व व्यापार केन्द्र पर हमले के फ़ौरन बाद 'दो सभ्यताओं के बीच टकराव' की बात की जाने लगी और फिर 'तुम हमारे साथ हो या फिर उनके साथ'। संदेश क्या था और संबोधन किनके लिए।

सात अक्टूबर 2001 को 'ऑपरेशन एंड्यूरिंग फ्रीडम' शुरू हुआ और अफ़गानिस्तान की धरती लाल होनी शुरू हुई। एक तरफ वर्दीधारी सिपाही तो दूसरी तरफ़ अमरीका के ही तैयारशुदा तालिबान जो अब भस्मासुर बन चुके थे। तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री आडवाणी तुरंत बोले कि हम कब से आतंकवाद का शिकार हैं। सरकार अमरीका को हिन्दुस्तान से आक्रमण करने तक की पेशकश करने लगी थी। इसी दौरान 13 दिसंबर 2001 को लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद के आतंकियों ने भारतीय संसद पर हमला किया। भारत और पाकिस्तान की सीमा पर सेना का जमावड़ा हुआ और युद्ध जैसी स्थिति बनने लगी। जैसा कि हमेशा होता है, जब भी सीमा पर तनाव बढ़ता है, मुल्क में सांप्रदायिक माहौल फ़ौरन तैयार होने लगता है। और इस समय तो 'दो सभ्यताओं के बीच टकराव' का नारा भी बुलंद हो चुका था।

आतंकवादी सामने थे और मुसलमान नाम से। इस से 'बेहतर' माहौल क्या हो सकता था! बस एक चिंगारी दरकार थी, जो सुलगी गोधरा में 27 मार्च 2002 को। तैयारियां भी ज़बरदस्त थी। पूर्व नियोजित। जल उठा गुजरात। जांच आज भी बाक़ी है।

गुजरात न जलता तो आज नरेन्द्र मोदी नमो न बनते। प्रधानमंत्री का सपना तो दूर की बात है। इत्तेफ़ाक नहीं था। पता था कि 2002 में ही चुनाव होने हैं गुजरात में। ठीक चुनाव से पूर्व 24 सितम्बर 2002 को अक्षरधाम मंदिर पर आतंकी हमला। आतंकवादी इन्तज़ार भी तो कर सकते थे चुनाव संपन्न होने तक। एक तरफ जनसंहार की छाया पहले ही चुनाव को सांप्रदायिक रंग दे चुकी थी, ऊपर से इस हमले ने चुनाव के पहले ही नतीजे का एलान कर दिया। भाजपा को भारी बहुमत प्राप्त हुआ।

इन आतंकवादी संगठनों को अच्छी तरह पता है कि जितनी बार यह हमला करेंगे उतनी बार कट्टर हिन्दुत्ववादी ताक़तों के हाथ मज़बूत होंगे। इतना ही नहीं। हिन्दुस्तान का आम मुसलमान इन हमलों की चक्की में बिना वजह पिसेगा। यह अच्छी तरह जानते हैं कि हज़ारों बेगुनाह मुसलमान जेलों में सड़ेंगे। फिर क्या वजह है कि आतंकी

हिंदुत्व को मज़बूत और हिन्दुस्तानी मुसलमानों को मुल्ज़िम और मुजरिम बना देते हैं। दरअसल यह खेल जानबूझ कर खेला जाता है। जो संगठन वहाबी, तबलीगी, जमाती के अलावा किसी को मुसलमान समझता ही न हो, वह उनकी परवाह क्यों करेगा?

खुले तौर पर इन वहाबी आतंकियों ने ऐलान किया है कि वहाबी-सलफी की नज़र में 'सुन्नी, शिया, ईसाई, यहूदी और वह सभी गैर-मज़हबी हमारे दुश्मन है।' कहां लिखा और प्रकाशित हुआ यह? 'द अस-सुन्नाह फाउन्डेशन ऑफ अमेरिका' के स्थानीय दफ्तर बर्टन, मिशिगन में। "जिहाद छेड़ने वाले अमरीका में कानूनी तौर पर दफ्तर चला रहे हैं? सऊदी पैसा इनको खुले तौर पर मिल रहा है? तो अचरज क्यों कि विश्व व्यापार केंद्र पर हमले से पहले जिन लोगों को ईमारत में मौजूद होना था वह नेबरास्का स्थित एयरफ़ोर्स बेस में बैठे हुए थे और ईमारत के पांच माले दस सितम्बर को ही खाली हो चुके थे। इतना ही नहीं आज खुले तौर पर 'द अस-सुन्नाह फाउन्डेशन' अमरीका, इंग्लैण्ड (सेंट ऐंस रोड लन्दन), (ओबेरहाउसेन) जर्मनी से अमरीका और यूरोप में अपनी गतिविधियां चला रहा है। और खुले आम ऐलान करके कि 'सुन्नी, शिया, ईसाई, यहूदी और सभी गैर मज़हबी हमारे दुश्मन हैं।' क्या अमरीका या इंग्लैण्ड और जर्मनी को इनके इरादों की खबर नहीं? यह भी बताना ज़रूरी है कि इन तमाम जगहों पर 'द अस-सुन्नाह फाउन्डेशन' के सारे कर्मचारी सऊदी मूल के हैं। क्या कहने की ज़रूरत है कि अल-क़ायदा, जैश-ए-मोहम्मद, लश्कर-ए-तैय्यबा के साथ इनके सीधे संपर्क हैं? ऐमान अल-ज़वाहिरी सऊदी अरब के ज़रिये इनका नेतृत्व करता है?

अब देखें कि इन दहशतगर्दों की मंशा क्या है और हिन्दुस्तान के हिन्दुत्ववादी संगठनों की मंशा क्या है, वे कैसे एक-दूसरे के सहयोगी बनते आये हैं। मौदूदी का उदाहरण बहुत कुछ पहले ही स्पष्ट कर देता है। गुरु गोलवलकर की हिटलर से मोहब्बत किसी से छिपी नहीं। हिटलर आदर्श था उनका। जिस तरह हिटलर एक नस्ल, एक भाषा, एक राष्ट्र, एक जैसा साहित्य, एक जैसी किताब की बातें करता था, वैसा ही नज़रिया गोलवलकर ने 'वी ऑर अवर नेशनहुड डिफाइंड' में पेश किया। वहाबी विचारधारा भी इसी तरह की है। एक का काम दूसरे को वैधता और ताकत देता है। यह सिर्फ आज की बात नहीं है। इसका एक उदाहरण दंगों के राजनैतिक उद्देश्य में दोनों पक्षों की आपसी सहमति से लिया जा सकता है।

अक्टूबर-नवंबर, 1946 के नोआखाली दंगे के पहले तक वहां हिंदू और मुसलमान दोनों ही मुल्क के बंटवारे के पक्ष में नहीं थे। लेकिन मुस्लिम लीग का आंदोलन तो बंटवारे के लिए था ही, हिंदू महासभा की भी यही मंशा थी।

'दंगों के तमाम सूत्र आखिरकार पाकिस्तान-आंदोलन की संस्थागत राजनीति से जुड़े हुए थे। इन दंगों के नतीजे में अधिकतर हिंदू और मुस्लिम पूरी तरह समझ गए कि अब बंटवारे के सिवा कोई रास्ता नहीं।' (सुरंजन दास : कम्युनल रॉयट्स इन बंगाल, 1905-47, दिल्ली, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1991)। इसी पुस्तक में सुरंजन दास ने साफ़ तौर पर लिखा है कि मुस्लिम लीग को हिंदू महासभा का मूक समर्थन हासिल था। आचार्य कृपलानी ने जो दंगों की रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसमें भी इस गठजोड़ का हवाला दिया था।

आमतौर पर एक-दूसरे की कट्टर विरोधी मानी जाने वाली ताकतें एक-दूसरे के सहारे ही ज़िंदा हैं। वहाबी विचारधारा वाले दहशतगर्द यह अच्छी तरह जानते हैं कि जिन देशों में मुसलमान बहुसंख्यक नहीं हैं या उनकी तादाद बहुत कम है वहां इनका तथाकथित इस्लामी कानून कभी लागू नहीं हो सकता। हिन्दुत्ववादी ताकतें भी इस तथ्य को अच्छी तरह से समझती हैं। अमरीका और यूरोप के तमाम देशों के सामने भी यह बात स्पष्ट है। लिहाज़ा हम देखते हैं कि शरीया कानून की मांग करने वाले इन संगठनों की दहशतगर्दी का केंद्र आमतौर पर अरब देश, अफ्रीकी मुस्लिम बहुसंख्यक देश और अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश जैसे मुल्क बन रहे हैं।

इन देशों में इनको समर्थन और अधिक तब मिलता है जब इनकी गतिविधियां भारत जैसे देशों में भी चलती रहें और यहां के बहुसंख्यक यह मानने लगें या मानते रहें कि वे 'इस्लामी दहशतगर्दी' के निशाने पर हैं। इनका यह कदम वैधता प्रदान करता है हिन्दुत्ववादी संगठनों को अपनी गतिविधियां तेज करने में और व्यापक समर्थन हासिल करने में। यही कारण है कि जब वहाबी आतंकवाद ज़रा देर के लिए हिंदुस्तान से नज़रें फेर लेता है तो हिन्दुत्ववादी संगठन उनके नाम पर खुद यह काम अंजाम देने लगते हैं। मालेगांव, मक्का मस्जिद जैसे अनेक उदाहरण हैं जहां इन ताकतों ने यह काम अंजाम दिया है। मज़े की बात यह है कि वहाबी कट्टरपंथियों ने कभी इससे इन्कार भी नहीं किया कि यह दहशतगर्दी का काम उनका था। समय आ पहुंचा है कि साम्प्रदायिकता और दहशतगर्दी के इस गठजोड़ को समझा जाये और दोनों ही ताकतों को शिकस्त दी जाए।

हम सब दाभोलकर!

अंधश्रद्धा के खिलाफ संघर्षरत एक संग्रामी की शहादत

■ सुभाष गाताडे

''जिन्दगी जीने के दो ही तरीके मुमकिन हैं। पहला यही कि कोई भी चमत्कार नहीं। दूसरा, सब कुछ चमत्कार ही है।''

-अलबर्ट आइंस्टीन

लफ्ज़ों की यह खासियत समझी जाती है कि वे पूरी चिकित्सकीय निर्लिप्तता के साथ ग्राही/ग्रहणकर्ता के पास पहुंचते हैं। यह ग्राही पर निर्भर करता है कि वह उनके मायने ढूंढने की कोशिश करे। बीस अगस्त की अलसुबह पुणे की सड़क पर अंधश्रद्धा विरोधी आन्दोलन के अग्रणी कार्यकर्ता डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर की हुई सुनियोजित हत्या की ख़बर से उपजे दुख एवं सदमे से उबरना उन तमाम लोगों के लिए अभी भी मुश्किल जान पड़ रहा है, जो अपने-अपने स्तर पर प्रगति एवं न्याय के संघर्ष में मुब्तिला हैं।

पुणे के निवासियों के एक बड़े हिस्से के लिए मुला मुठा नदी के किनारे बना ओंकारेश्वर मंदिर वह जगह हुआ करती रही है जहां लोग अपने अन्तिम संस्कार के लिए ले जाए जाते रहे हैं। इसे विचित्र संयोग कहा जाएगा कि उसी मन्दिर के ऊपर बने पुल से अल सुबह गुजरते हुए डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर ने अपनी झंझावाती जिन्दगी की चन्द आखिरी सांसें लीं। एक जुम्बिश ठहर गयी, एक जुस्तजू अधबीच थम गयी। मोटरसाइकिल पर सवार हत्यारे नौजवानों द्वारा दागी गयी चार गोलियों में से दो उनके सिर के पिछले हिस्से में लगी थीं और वह वहीं खून से लथपथ गिर गए थे।

अपनी मृत्यु के एक दिन पहले शाम के वक्त मराठी भाषा के सहयाद्री टीवी चैनल पर उपस्थित होकर वह जाति पंचायतों की भूमिका पर अपनी राय प्रगट कर रहे थे। उस वक्त किसे यह गुमान हो सकता था कि उन्हें 'सजीव' अर्थात लाइव सुनने का यह आखिरी अवसर होने वाला है। यह पैनल चर्चा नासिक जिले की एक विचलित करने वाली घटना की पृष्ठभूमि में आयोजित की गयी थी, जहां किसी कुम्हारकर नामक व्यक्ति द्वारा अपनी जाति पंचायत के आदेश पर अपनी बेटी का गला घोंटने की घटना सामने आयी थी। वजह थी उसका अपनी जाति से बाहर जाकर किसी युवक से प्रेमविवाह। चर्चा में हिस्सेदारी करते हुए डॉ. दाभोलकर बता रहे थे कि किस तरह उन्होंने हाल के दिनों में अन्तरजातीय विवाह को बढ़ावा देने के लिए सम्मेलन का आयोजन किया था और इसी मसले पर घोषणापत्र भी तैयार किया था।

एक बहुआयामी व्यक्ति - प्रशिक्षण से डाक्टरी चिकित्सक, अपनी रुचि के हिसाब से देखें तो लेखक-सम्पादक एवं वक्ता और एक आवश्यकता की वजह से एक आन्दोलनकारी, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पूरे मुल्क के तर्कशील आन्दोलन के लिए वह एक अद्भुत मिसाल थे और अपने संगठन एवं उसकी 200 से अधिक शाखाओं के ज़रिये सूबा महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं गोवा में जनजागृति के काम में लगे थे। बहुत कम लोग जानते थे कि अपने स्कूल-कॉलेज के दिनों में वह जाने-माने कब्बडी के खिलाड़ी थे, जिन्होंने भारतीय टीम के लिए मेडल भी जीते थे। हालांकि उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की शुरुआत डाक्टरी प्रैक्टिस से की थी, मगर जल्द ही वह डॉ. बाबा आढाव द्वारा संचालित 'एक गांव, एक जलाशय (पाणवठा)' नामक मुहिम से जुड़ गए थे। विगत दो दशक से अधिक समय से वह अंधश्रद्धा के खिलाफ मुहिम में मुब्तिला थे।

डॉ. दाभोलकर की प्रचण्ड लोकप्रियता का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उनकी मौत की ख़बर सुनते ही महाराष्ट्र के तमाम हिस्सों में स्वतःस्फूर्त प्रदर्शन हुए, और उनके गृहनगर सातारा में तो जुलूस में शामिल हजारों की तादाद ने ज़िन्दगी के सत्तरवें बसन्त की तरफ बढ़ रहे अपने नगर के इस प्रिय एवं सम्मानित व्यक्ति को अपनी आदरांजलि दे दी। 21 अगस्त को पुणे शहर में सभी पार्टियों के संयुक्त आह्वान पर बन्द का आयोजन किया गया।

राजनेताओं से लेकर सामाजिक कार्यकर्ताओं तक सभी ने डॉक्टर दाभोलकर को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। उन्हें किस हद तक विरोध का सामना करना पड़ता था इस बात का अन्दाज़ा इस तरह लगाया जा सकता है कि विगत अठारह साल से महाराष्ट्र विधानसभा के सामने एक बिल लम्बित पड़ा रहा है जिसका फोकस जादू-टोना करने वाले या काला जादू करने वाली ताकतों पर रोक लगाना है। रूढ़िवादी हिस्से के विरोध को देखते हुए इस बिल में आस्था क्या है या अंधआस्था किसे कहेंगे इसको परिभाषित करने से बचा

गया था और सूबे में व्यापक पैमाने पर व्यवहार में रहने वाली अंधश्रद्धाओं को निशाने पर रखा गया था। ऐसी गतिविधियां संज्ञेय एवं गैर-जमानती अपराध के तौर पर दर्ज हों, ऐसे अपराधों की जांच के लिए या उन पर निगरानी रखने के लिए जांच अधिकारी नियुक्त करने की बात भी इसमें की गयी थी।

'महाराष्ट्र प्रीवेन्शन एण्ड इरेडिकेशन ऑफ ह्यूमन सैक्रिफाइस एण्ड अदर इनह्यूमन इविल प्रैक्टिसेस एण्ड ब्लैक मैजिक' शीर्षक इस बिल का हिन्दू अतिवादी संगठनों ने लगातार विरोध किया है, पिछले दो साल से वारकरी समुदाय के लोगों ने भी विरोध के सुर में सुर मिलाया है और इन्हीं का हवाला देते हुए इस अन्तराल में सूबे में सत्तासीन सरकारों ने इस बिल को पारित नहीं होने दिया है। आप इसे डॉ. दाभोलकर की हत्या से उपजे जनाक्रोश का नतीजा कह सकते हैं या सरकार द्वारा अपनी झेंप मिटाने के लिए की गयी कार्रवाई कह सकते हैं कि इस दुखद घटना के महज एक दिन बाद महाराष्ट्र सरकार के कैबिनेट में इस बिल को लेकर एक अध्यादेश लाने का निर्णय लिया गया है।

निःसन्देह उनकी हत्या के पीछे एक सुनियोजित साजिश की बू आती है। आखिर किसने ऐसे शख्स की हत्या की होगी जिसने महाराष्ट्र की समाज सुधारकों की - ज्योतिबा फुले, महादेव गोविन्द रानडे या गोपाल हरि आगरकर - विस्मृत हो चली परम्परा को नवजीवन देने की कोशिश की थी?

कई सारी सम्भावनाएं हैं। यह सही है कि उनके कोई निजी दुश्मन नहीं थे मगर अंधश्रद्धा के खिलाफ उनके अनवरत संघर्ष ने ऐसे तमाम लोगों को उनके खिलाफ खड़ा किया था, जिनको उन्होंने बेपर्द किया था। तयशुदा बात है कि ऐसे लोग कारस्तानियों में लगे होंगे। राजनीति में सक्रिय यथास्थितिवादी शक्तियों के लिए भी उनके काम से परेशानी थी। पुलिस ने कहा कि वह इन आरोपों की भी पड़ताल करेगी कि इसके पीछे सनातन संस्था और हिन्दू जनजागृति समिति जैसी अतिवादी संस्थाओं का हाथ तो नहीं है, जिसके सदस्य महाराष्ट्र एवं गोवा में आतंकी घटनाओं में शामिल पाए गए हैं। इस बात को रेखांकित करना ही होगा कि कई भाषाओं में प्रकाशित अपने अख़बार 'सनातन प्रभात' के ज़रिये इन संस्थाओं ने डॉ. दाभोलकर के खिलाफ जबरदस्त मुहिम चला रखी थी, इतना ही नहीं उन्होंने दाभोलकर के ऐसे फोटो भी प्रकाशित किए थे, जिसे लाल रंग से क्रॉस किया गया था, जिसमें उनकी सांकेतिक समाप्ति की तरफ इशारा था।

डॉ. दाभोलकर को दी अपनी श्रद्धांजलि में लेखक एवं राजनीतिक विश्लेषक आनन्द तेलतुम्बडे लिखते हैं कि (http:/www-countercurrents-org/teltumbde 230813-htm)

'...दाभोलकर की हत्या के बाद भी सनातन संस्था ने उनके प्रति अपनी घृणा के भाव को छिपाया नहीं बल्कि अगले ही दिन जबकि पूरा राज्य दुख एवं सदमे में था, उन्होंने अपने मुखपत्र में लिखा कि यह ईश्वर की कृपा थी कि दाभोलकर की मृत्यु ऐसे हुई। गीता को उदधृत करते हुए लिखा गया कि जो जनमा है, उसकी मृत्यु निश्चित है, जन्म एवं मृत्यु हरेक की नियति के हिसाब से होते हैं। हरेक को अपने कर्म का फल मिलता है। बिस्तर पर पड़े-पड़े बीमारी से मरने के बजाय, डॉ. दाभोलकर की जो मृत्यु हुई वह ईश्वर की ही कृपा थी।'..इतना ही नहीं इस हत्या से अपने सम्बन्ध से इन्कार करने के लिए बुलायी गयी प्रेस कॉन्फ्रेंस में उन्हें यह कहने में भी संकोच नहीं हुआ कि वह दाभोलकर की लाल रंग से क्रॉस की गयी तस्वीर की तरह कई अन्यों की तस्वीरें भी प्रकाशित करेंगे। कहने का तात्पर्य कि जो दाभोलकर की राह चलेगा उन्हें वह नष्ट करेंगे।'

ऐसा नहीं था कि डॉ. दाभोलकर को इस बात का अन्दाज़ा नहीं था कि ऐसी ताकतें किस हद तक जा सकती हैं। उनके परिवार के सदस्यों के मुताबिक उन्हें अक्सर धमकियां मिलती थीं, लेकिन उन्होंने पुलिस सुरक्षा लेने से हमेशा इन्कार किया। उनके बेटे हामिद ने कहा कि ''वे कहते थे कि उनका संघर्ष अज्ञान की समाप्ति के लिए है और उससे लड़ने के लिए उन्हें हथियारों की ज़रूरत नहीं है।'' उनके भाई ने अश्रुपूरित नयनों से बताया कि जब हम लोग उनसे पुलिस सुरक्षा लेने का आग्रह करते थे, तो वह कहते थे कि 'अगर मैंने सुरक्षा ली तो वे लोग मेरे साथियों पर हमला करेंगे। और यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। जो होना है मेरे साथ हो।''

विभिन्न बाबाओं के खिलाफ एवं साध्वियों के खिलाफ भी उन्होंने 'महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति' के बैनर तले आन्दोलन चलाया था। एक किशोरी के साथ कथित बलात्कार के आरोपों के चलते इन दिनों सुर्खियां बटोर रहे आसाराम बापू ने पिछले दिनों होली के मौके पर नागपुर में अपने शिष्यों के साथ होली के कार्यक्रम का आयोजन किया था। काफी समय से सूखा झेल रहे महाराष्ट्र में इस कार्यक्रम के लिए लाखों लीटर पीने के पानी के टैंकरों का इन्तजाम किया गया था। समिति के बैनर तले डॉ. दाभोलकर ने इस कार्यक्रम को चुनौती दी और अन्ततः यह कार्यक्रम नहीं हो सका। चर्चित निर्मल बाबा के खिलाफ भी डॉ. दाभोलकर ने पिछले दिनों अपना मोर्चा खोला था। यू-ट्यूब पर आप चाहें तो डॉ. दाभोलकर के भाषण को सुन सकते हैं निर्मल बाबा : शोध आणि बोध। यह वही निर्मल बाबा हैं जिनका कार्यक्रम एक साथ 40 विभिन्न चैनलों पर चलता है जहां लोगों को

उनकी समस्याओं के समाधान के नाम पर ईश्वरीय कृपा की सौगात दी जाती है। उनकी समागम बैठकों में 2000 रुपए के टिकट भी लगते हैं।

वर्ष 2008 में डॉ. दाभोलकर एवं अभिनेता एवं समाजकर्मी डॉ. श्रीराम लागू ने ज्योतिषियों के लिए एक प्रश्नमालिका तैयार की और कहा कि अगर उन्होंने तर्कशीलता की परीक्षा पास की तो उन्हें पुरस्कार मिल सकता है। अभी तक इस पर दावा ठोकने के लिए कोई आगे नहीं आया। वर्ष 2000 में अपने संगठन की पहल पर उन्होंने राज्य के सैकड़ों महिलाओं की रैली अहमदनगर जिले के शनि शिंगणापुर मन्दिर तक निकाली जिसमें महिलाओं के लिए प्रवेश वर्जित था। न केवल रूढ़िवादी तत्वों ने बल्कि शिवसेना एवं भाजपा के कार्यकर्ताओं ने परम्परा एवं आस्था की दुहाई देते हुए महिलाओं के प्रवेश को रोकना चाहा, उनकी गिरफ्तारियां भी हुईं और फिर मामला मुंबई की उच्च अदालत पहुंचा और सुनने में आया है कि मामला पूरा होने के करीब है।

अपने एक आलेख 'रैशनेलिटी मिशन फॉर सक्सेस इन लाइफ' में जिसमें 'उनका मकसद आवश्यक बदलाव के लिए लोगों को प्रेरित करना है' उन्होंने लिखा था!

'परम्पराओं, रस्मो-रिवाज़ और मन को विस्मित कर देने वाली प्रक्रियाओं से बनी युगों पुरानी अंधश्रद्धाओं की पूर्ति के लिए पैसा, श्रम और व्यक्ति एवं समाज का समय भी लगता है। आधुनिक समाज ऐसे मूल्यवान संसाधनों को बर्बाद नहीं कर सकता। दरअसल अंधश्रद्धाएं इस बात को सुनिश्चित करती हैं कि गरीब एवं वंचित लोग अपने हालात में यथावत बने रहें और उन्हें अपने विपन्न करने वाले हालात से बाहर आने का मौका तक न मिले। आइए हम प्रतिज्ञा लें कि हम ऐसी किसी अंधश्रद्धा को स्थान नहीं देगें और अपने बहुमूल्य संसाधनों को बर्बाद नहीं करेंगे। उत्सवों पर करदाताओं का पैसा बर्बाद करने वाली, कुम्भ मेला से लेकर मंदिरों/मस्जिदों/गिरजाघरों के रख-रखाव के लिए पैसा व्यय करने वाली सरकारों का हम विरोध करेंगे और यह मांग करेंगे कि पानी, उर्जा, कम्युनिकेशन, यातायात, स्वास्थ्य सेवा, प्राइमरी शिक्षा और अन्य कल्याणकारी एवं विकास सम्बन्धी गतिविधियों के लिए वह इस फण्ड का आवंटन करें।'

उनके जीवन की एक अन्य कम उल्लेखित उपलब्धि रही है, विगत अठारह साल से उन्होंने किया 'साधना' नामक साप्ताहिक का सम्पादन, जिसने अपनी स्थापना के 65 साल हाल ही में पूरे किए। जानकार बताते हैं कि जब उन्होंने सम्पादक का जिम्मा सम्भाला तो सानेगुरुजी जैसे स्वतंत्रता सेनानी एवं समाज सुधारक द्वारा स्थापित यह पत्रिका काफी कठिन दौर से गुजर रही थी, मगर उनके सम्पादन ने इस परिदृश्य को बदल दिया और आज भी यह पत्रिका तमाम परिवर्तनकारी ताकतों के विचारों के लिए मंच प्रदान करती है।

ठीक ही कहा गया है कि डॉ. दाभोलकर की असामयिक मौत देश के तर्कवादी आन्दोलन के लिए गहरा झटका है। देश में दक्षिणपंथी ताकतों के उभार के चलते पहले से ही तमाम चुनौतियों का सामना कर रहे इस आन्दोलन ने अपने एक सेनानी को खोया है। मगर अतिवादी ताकतों के हाथ उनकी मौत दरअसल उन सभी के लिए एक झटका कही जा सकती है जो देश में एक प्रगतिशील बदलाव लाने की उम्मीद रखते हैं। अब यह देखना होगा कि उनकी मृत्यु से उपजे प्रचण्ड दुख एवं गुस्से को ऐसी तमाम ताकतें मिल कर किस तरह एक नयी संकल्प शक्ति में तब्दील कर पाती हैं ताकि अज्ञान, अतार्किकता एवं प्रतिक्रिया की जिन ताकतों के खिलाफ लड़ने में डॉ. दाभोलकर ने मृत्यु का वरण किया, वह मशाल आगे भी जलती रहे।

प्रतिक्रियावादी तत्व भले ही डॉ. दाभोलकर को मारने में सफल हुए हों, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जिस तरह से उनकी हत्या हुई है उसने तमाम नए लोगों को भी दिमागी गुलामी के खिलाफ जारी इस व्यापक मुहिम से जोड़ा भी है। यह अकारण नहीं कि महाराष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर हुई रैलियों में तमाम बैनरों, पोस्टरों में एक छोटे से पोस्टर ने तमाम लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था जिस पर लिखा था 'आम्ही सगले दाभोलकर' (हम सब दाभोलकर)।

जादू टोना विरोधी विधेयक में यह माना जाएगा अपराध :

भूत भगाने के नाम पर किसी को मारना या पीटना, पर किसी तरह का मंत्र पढ़ने पर पाबन्दी नहीं होगी।

- चमत्कार के नाम पर दूसरों को धोखा देना या पैसा लेना।
- किसी की ज़िन्दगी को खतरे में डाल कर अघोरी तरीके का इस्तेमाल करना।
- भानामती, करणी, जारणमरण, गुप्तधन के नाम से अमानवीय काम करना या नरबलि देना।
- दैवी शक्ति का दावा होने के नाम पर डर फैलाना।
- पिछले जन्म में पत्नी, प्रेमिका या प्रेमी होने का दावा कर या बच्चा होने का आश्वासन देकर संबंध बनाना।
- उंगली से आपरेशन का दावा करना।
- गर्भवती महिलाओं के लिंग परिवर्तन का दावा करना।
- भूत पिशाच का आवाहन करते हुए डर फैलाना।
- कुत्ता, बिच्छू, सांप काटने पर दवा देने से मना करके मंत्र द्वारा ठीक करने का दावा करना।
- मतिमंद व्यक्ति में अलौकिक शक्ति का दावा कर उस व्यक्ति का इस्तेमाल धंधे या व्यवसाय के लिए करना।

बाथे में किसने मारा दलितों को

■ कुमार नरेंद्र सिंह

लक्ष्मणपुर बाथे के दलित मोहल्ले में सन्नाटा पसरा है और दलितों के चेहरे पर दहशत। 12 दिसंबर, 1997 में हुए बाथे जनसंहार मामले में ट्रायल कोर्ट के फैसले के बाद दलितों के मन में जीत का जो भाव पैदा हुआ था, वह पटना हाई कोर्ट द्वारा सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त करार दिए जाने के बाद बिला गया है और अब उनके मन में फिर से बाथे जनसंहार जैसी किसी अनहोनी की आशंका उमड़ने लगी है। उल्लेखनीय है कि ट्रायल कोर्ट ने लक्ष्मणपुर बाथे जनसंहार के मामले में 26 लोगों को सजा दी थी। लेकिन पटना हाई कोर्ट के फैसले के बाद वे इस बात को लेकर भयभीत हैं कि क्या उनके दरवाजे फिर तोड़े जाएंगे? क्या उनके घर फिर उजाड़े जाएंगे? क्या रणवीर सेना के दरिंदे फिर उनकी निर्मम हत्या करेंगे?

पिछले 9 अक्टूबर को पटना हाई कोर्ट ने लक्ष्मणपुर बाथे जनसंहार के उन सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त करार दे दिया, जिन्हें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश विजय प्रकाश मिश्र ने वर्ष 2010 में दोषी करार देते हुए उनके खिलाफ सजा सुनाई थी। माननीय न्यायाधीश ने तब रणवीर सेना के 26 लोगों के खिलाफ सजा सुनाई थी, जिनमें से 16 लोगों को फांसी और 10 लोगों को आजीवन कारावास की सजा दी गई थी। रणवीर सेना की दरिंदगी के शिकार हुए लोगों के परिजनों समेत बाथे गांव के अन्य दलितों को आशा थी कि पटना हाई कोर्ट भी लोअर कोर्ट की सजा बरकरार रखेगी, लेकिन उनकी आशा पर तब तुषारापात हो गया, जब पटना हाई कोर्ट ने लोअर कोर्ट के फैसले को पलटते हुए सभी अभियुक्तों को दोष से बरी कर दिया। न्यायाधीश वी. एन. सिन्हा और ए. के. लाल की खंडपीठ ने इस टिप्पणी के साथ अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया कि गवाहों की विश्वसनीयता संदिग्ध है। वैसे फैसले के बाद पटना हाई कोर्ट की मंशा पर लोग भी सवाल उठा रहे हैं। कई राजनीतिक दलों ने भी पटना हाई कोर्ट के फैसले को दुर्भाग्यपूर्ण बताया है और संदेह जताया है कि ऐसे फैसलों से न्यायपालिका के प्रति लोगों का विश्वास खंडित होगा। जनसंहार के मामलों में पटना हाई कोर्ट के कतिपय फैसलों पर यदि नज़र डालें, तो लोगों का संदेह निराधार भी नहीं लगता है। यह कोई पहला मामला नहीं है, जब पटना हाई कोर्ट ने संदेह का लाभ देते हुए सभी आरोपितों को दोषमुक्त करार दिया है। वास्तव में यह ऐसा चौथा मामला है। इससे पहले पटना हाई कोर्ट जनसंहार के अन्य तीन मामलों में भी संदेह का लाभ देते हुए सभी अभियुक्तों को बरी कर चुका है। इसी साल जुलाई महीने में उसने मियांपुर जनसंहार मामले में लोअर कोर्ट द्वारा दंडित 10 अभियुक्तों में से 9 लोगों को दोषमुक्त करार दिया। मियांपुर जनसंहार को भी रणवीर सेना ने ही 16 जून, 2000 को अंजाम दिया था, जिसमें 34 लोग बर्बरतापूर्वक मारे गए थे। इसी तरह पिछले मार्च में भोजपुर जिले के नगरी गांव में 10 दलितों की हत्या के आरोप में सजायाफ्ता 11 लोगों को भी पटना हाई कोर्ट ने दोषमुक्त कर दिया था। बथानी टोला जनसंहार के 23 आरोपितों को भी पटना हाई कोर्ट ने दोष से बरी कर दिया है।

इसके विपरीत जिन मामलों में बड़ी जाति के लोग नक्सली कार्यकर्ताओं द्वारा मारे गए, उन मामलों में उन्हें आवश्यक रूप से सजा हुई और फांसी तक की सजा हुई। पटना हाई कोर्ट के फैसलों को देखकर कोई भी विवेकशील व्यक्ति यही कहेगा कि उसके फैसले आपराधिक न्याय व्यवस्था की वकालत नहीं करते। एक ही अपराध के लिए यदि एक को फांसी दी जाए और दूसरे को रिहा कर दिया जाए, तो जाहिर है कि इससे न्यायायिक निष्पक्षता भंग होती है। ऐसे में यदि कोई कहता है कि सारा सरकारी तंत्र दलितों के खिलाफ है, तो इसमें गलत क्या है। अब तक रणवीर सेना और सवर्णों की अन्य सेनाएं सम्मिलित रूप से 81 जनसंहार को अंजाम दे चुकी हैं, लेकिन अदालत द्वारा आज तक किसी भी निजी सेना के किसी भी सैनिक या समर्थक को फांसी या आजीवन कारावास की सजा नहीं दी गई है। ऐसे में बाथे गांव के बउध पासवान का यह कहना लाजिमी लगता है, कि "59 लोगों की हत्या हुई, लेकिन दोषी एक भी नहीं। अदालत उनकी है, सरकार उनकी है, लाठी उनकी है और गरीब तो केवल बकरी है। यह अन्याय नहीं, तो क्या है।" बाथे जनसंहार में बउध पासवान के सात सदस्य हलाक हुए थे। इसी तरह प्रमिला देवी जब कहती हैं कि "पूरा देश जानता है कि 59 लोगों को किसने मारा, लेकिन अदालत नहीं जानती", तो वास्तव में वह न्यायायिक व्यवस्था पर ही उंगली उठा रही होती हैं।

लक्ष्मणपुर बाथे गांव के दलित अब भी अदालती फैसले के सदमे से उबरे नहीं हैं। उन्हें लगता है कि अदालत ऐसा फैसला कैसे दे सकती है। अदालत के इस अवलोकन पर कि गवाह विश्वसनीय नहीं हैं, लक्ष्मण राजवंशी कहते हैं, "मैं उन्हें कैसे नहीं पहचान सकता था। हम एक ही गांव में रहते हैं। हम उनके खेतों में काम करते हैं। उन्हें दिनभर में मैं कम-से-कम 10 बार देखता हूं, उनकी आवाज़ पहचानता हूं। हमें इस हमले की कोई आशंका नहीं थी, अन्यथा हम सावधान रहते।" वह प्रदेश के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से काफी निराश हैं। वह कहते हैं, "नीतीश सरकार सामंतों के साथ है। नीतीश ने हमें महादलित की श्रेणी में रखा, हमारा वोट लिया और उसके बाद हमारा गला काट दिया।"

पटना हाई कोर्ट का फैसला तो दुर्भाग्यपूर्ण लगता ही है, लेकिन सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि यह फैसला राष्ट्रीय चेतना को झकझोरने में नाकामयाब रहा। हमारे देश का मीडिया, जो तिल का ताड़ बना देता है, जिसे संतों-महंतों से लेकर चोर, गिरहकट, भ्रष्टाचारी तक की खबरें परोसने में कोई परेशानी नहीं होती, जिसे अमिताभ बच्चन की छींक या सनी लियोन की देह्यष्टि पर विशेष बुलेटिन बनाने से

गुरेज नहीं होता, उस मीडिया ने पटना हाई कोर्ट के फैसले पर टिप्पणी करने से भी परहेज किया। यह वही मीडिया है, जिसने निर्भया कांड में दोषियों के खिलाफ कार्रवाई की मुहिम चलाई, वहीं जब दलितों का मामला आया, तो भेदपूर्ण चुप्पी साध ली। ऐसे में कहे बिना भी स्पष्ट हो जाता है कि मीडिया को गरीबों के आंसू नहीं भाते। उनकी पीड़ा का एहसास उसे नहीं होता। लेकिन तब सवाल यह पैदा होता है कि क्या सिर्फ हंसते-मुस्कुराते चेहरे दिखाना या भड़ैती करना ही मीडिया का काम है। हमारे देश की सिविल सोसायटी का आचरण तो और भी खटकने वाला है। नगरों, महानगरों की घटनाओं पर आसमान सिर पर उठाने वाला हमारा नागरिक समाज आखिर तब क्यों चुप्पी साध लेता है, जब गरीबों की जान जाती है या उनकी इज्जत लूटी जाती है? पटना हाई कोर्ट के फैसले पर जब बाथे के दलित सरापा कर रहे थे, तो हमारा मीडिया सचिन तेंदुलकर के रिटायरमेंट पर विशेष बुलेटिन प्रसारित करने में व्यस्त था। यह चुप्पी वास्तव में गरीबों की पीड़ा को महत्व नहीं देने की कोशिश का हिस्सा है, जो गाहे-बगाहे सामने आती रहती है।

सच कहा जाए, तो पटना हाई कोर्ट के इस फैसले की पृष्ठभूमि तो उसी दिन तैयार हो गई थी, जिस दिन नीतीश सरकार ने आमीर दास आयोग को भंग किया। मालूम हो कि लालू यादव के कार्यकाल में रणवीर सेना और राजनीतिक दलों के बीच गठजोड़ को उजागर करने के लिए आमीर दास आयोग बिठाया गया था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं समझा जाना चाहिए कि आमीर दास आयोग बिठाने के पीछे लालू यादव की मंशा निष्पक्ष थी, बल्कि इसके उलट उन्होंने आयोग का गठन मजबूरी में किया था। यही कारण है कि जब नीतीश सरकार ने आमीर दास आयोग को भंग किया, तो लालू यादव ने कोई विपरीत प्रतिक्रिया जाहिर करने के बदले चुप्पी साधना ही बेहतर समझा। बाथे जनसंहार मामले में पटना हाई कोर्ट के फैसले को बेहतर ढंग से समझने के लिए एक तरफ रणवीर सेना और प्रदेश प्रशासन तंत्र के बीच अपवित्र गठजोड़ और दूसरी तरफ राजनीतिक दलों और रणवीर सेना के बीच संबंधों का आकलन ज़रूरी जान पड़ता है।

चूंकि रणवीर सेना सवर्णो की सेना है और बिहार के प्रशासन पर उन्हीं का कब्जा है, इसलिए रणवीर सेना को प्रदेश के प्रशासन तंत्र का भरपूर सहयोग मिलता रहा है। इसका अंदाजा केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि पुलिस मुठभेड़ों में जहां नक्सली बड़ी संख्या में मारे जाते रहे हैं, वहीं आज तक रणवीर सेना का कोई भी कार्यकर्ता नहीं मारा गया। वैसे रणवीर सेना ही क्यों, किसी भी निजी सेना का कोई कार्यकर्ता कभी नहीं मारा गया। दरअसल, पारंपरिक रूप से बिहार पुलिस बल में राजपूत-भूमिहार-ब्राह्मणों का ही वर्चस्व रहा है। वैसे सच तो यह है कि बिहार का पूरा प्रशासन तंत्र पर ऊंची जातियों का ही कब्जा रहा है। परेशानी वाली बात यह भी है कि नीची जातियों के पुलिसकर्मी भी आम दलितों के साथ वही व्यवहार करते हैं, जो ऊंची जाति वाले करते हैं। दरअसल, संपन्न तबके से पुलिस के इतने ज्यादा हित सधते हैं कि वह अमूमन उन्हीं के पक्ष में खड़ी होती है। भोजपुर जिले के एकवारी गांव में अप्रैल, 1997 में हुए जनसंहार के बाद भोजपुर के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक ने स्वयं स्वीकार किया था कि पुलिसकर्मी अमूमन भोजन और ठहरने की सुविधा भूस्वामियों से ही पाते हैं। इसका व्यवहारिक नतीजा यह होता है कि भूस्वामियों और पुलिसकर्मियों के बीच एक नाजायज संबंध विकसित हो जाता है, जिसका फायदा रणवीर सेना को मिलता है।

प्रशासन तंत्र के अलावा राजनीतिक दलों से भी रणवीर सेना का संबंध अन्य सेनाओं की तुलना में ज्यादा प्रगाढ़ रहा है। यह जगजाहिर है कि भारतीय जनता पार्टी और समता पार्टी (अब जनता दल यूनाइटेड) रणवीर सेना का प्रमुख संरक्षक रही हैं। बेलाउर में जिस दिन रणवीर सेना का औपचारिक गठन हुआ था, उस दिन बिहार के कई भाजपा नेता वहां मौजूद थे। इसके अलावा कांग्रेस, राजद, बिहार पीपुल्स पार्टी और यहां तक कि सीपीआई जैसे कुछ वामपंथी संगठनों के राज्य स्तरीय और स्थानीय नेता परोक्ष रूप से रणवीर सेना के मददगार रहे हैं। रणवीर सेना के लोग खुद बताते हैं कि चुनाव में अनेक पार्टियों के नेता उनसे समर्थन लेते हैं। इस सहायता के बदले वे रणवीर सेना को संरक्षण तो देते ही हैं, उन्हें हथियार भी मुहैया कराते हैं। रणवीर सेना और राजनीतिक दलों के इसी गठजोड़ का पता लगाने के लिए आमीर दास आयोग का गठन किया गया था। जल्दी ही पता चलने लगा कि रणवीर सेना के साथ बिहार के कई दलों के नेताओं के संबंध रहे हैं। आमीर दास आयोग के चेयरमैन के निजी सहायक लाला रामचंद्र प्रसाद वर्मा कहते हैं कि रिपोर्ट में अन्य लोगों के अलावा सुशील मोदी, कांति सिंह, अखिलेश्वर सिंह, मुरली मनोहर जोशी के संबंध रणवीर सेना के साथ होने के आरोप हैं। आमीर दास आयोग ने अपनी तहकीकात के दौरान पाया कि सुशील मोदी ने चुनाव में रणवीर सेना का समर्थन लिया। इसी तरह मुरली मनोहर जोशी पर आरोप है कि उन्होंने हैबसपुर जनसंहार मामले में कार्रवाई करने के खिलाफ पालीगंज थाने के दरोगा को धमकाया। सीपी ठाकुर पर आरोप है कि 1997 में हैबसपुर जनसंहार के ठीक पहले वे रणवीर सेना की बैठक में शामिल हुए थे। इसके अलावा रणवीर सेना के प्रमुख ब्रह्मेश्वर सिंह से भी उनके घनिष्ठ संबंध होने की बात रिपोर्ट में दर्ज है। आमीर दास आयोग की रिपोर्ट के अनुसार रणवीर सेना के साथ अन्य नेताओं के भी संबंध रहे हैं, जिनमें शिवानंद तिवारी, रामजतन सिन्हा, नंदकिशोर यादव, अरुण कुमार, मुंद्रिका सिंह यादव, रघुनाथ झा, सुनील पांडेय, कृष्णा सरदार, अखलाक अहमद, जगदीश शर्मा, चंद्रदेव प्रसाद वर्मा तथा रामलखन सिंह यादव प्रमुख हैं। रणवीर सेना के साथ ऐसे लोगों की मिलीभगत देखते हुए पटना हाई कोर्ट का फैसला अजूबा नहीं लगता। क्या यह बताना पड़ेगा कि बिहार के न्यायायिक तंत्र पर भी ऊंची जातियों का ही कब्जा है।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्रदेश के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने आमीर दास आयोग को भंग ही इसलिए किया कि जद(यू) समेत अन्य दलों के नेताओं को बचाया जा सके, लेकिन उन्हें इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ सकता है। उनका मुख्य जनाधार महादलितों में ही है। पटना हाई कोर्ट का फैसला उन्हें नीतीश से दूर कर सकता है। यह कयास नहीं, बल्कि एक मुकम्मल संभावना है, जिसे खारिज नहीं किया जा सकता। अगले चुनाव में महादलित नीतीश को समर्थन देने से परहेज भी कर सकते हैं। वैसे भी महादलित नीतीश से दूर होने लगे हैं, कम-से-कम बाथे के पीड़ितों और उनके परिजनों की बातों से तो ऐसा ही लगता है।

प्रयोगशाला की राह में...

■ सुरेन्द्र रावत

लोकसभा चुनावों के मद्देनज़र साल 2014 विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की दहलीज़ पर खड़ा झांक रहा है। ऐसे में वृहद हिंदी पट्टी वाले उत्तर प्रदेश में, जहां से लोकसभा की 80 सीटें हैं, वोटों के ध्रुवीकरण हेतु चुनावी घमासान की दस्तक के अंदाज का अंदेशा जाहिर था। जिसका आगाज़ सांप्रदायिकता से हुआ। आज की तारीख में उत्तर प्रदेश एक बार फिर से प्रयोगशाला बनने की राह पर चल निकला है। क्योंकि इसका अपना महत्व और अपना गणित है। और राजनीतिक पार्टियां कहीं बेहतर तरीके से जानती हैं कि अगर यहां बाजी मार ली तो केंद्र जीतना आसान होगा। खासकर जनसंघ की प्रयोगशाला के तौर पर जाना जाने वाला उत्तर प्रदेश इस बार न दहके यह असंभव प्रतीत होता है।

यूं तो छिटपुट सांप्रदायिक घटनाएं आए दिन घट रही थीं लेकिन इसकी असल शुरुआत विश्व हिंदू परिषद द्वारा अयोध्या से 84 कोसी परिक्रमा फैज़ाबाद जिला प्रशासन द्वारा यात्रा में रोक से हुई। और इसकी विफलता के बाद सांप्रदायिक ताकतें मौके की ताक में थीं, जो उन्हें मिला कवाल में। जहां से सांप्रदायिक हिंसा ने इस बार एक नया मोड़ लिया। वैसे तो हमेशा की तरह यह हिंसा हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच ही हुई लेकिन अबकी बार इसका रुख शहर की बजाय देहात की तरफ था। जिसने चौधरी चरण सिंह के समय से बने मुस्लिम-जाट समीकरण को तोड़ा।

पुजारी आचार्य सत्येंद्र दास राम के कथनानुसार ''हिंदू धर्म के हिसाब से यह 84 कोसी परिक्रमा अप्रैल में हो चुकी थी इसलिए इस परिक्रमा का कोई मतलब नही है।''

27 अगस्त को पंद्रह हजार की आबादी वाले कवाल में शाहनवाज की हत्या और उसकी प्रतिक्रिया में जाट समुदाय के दो भाइयों गौरव और सचिन की हत्या से (इस मामले में अलग-अलग संस्करण हैं) पैदा हुई चिंगारी ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिला मुज़फ़्फ़रनगर और उसके आस-पास के जिले खासकर वह क्षेत्र जहां हिंदु-मुस्लिम तादाद एक विशेष अनुपात में है, को जिस तरह से अपनी लपट में लिया वह इस बाबत कई सवाल खड़े कर जाती है। इन दंगों में 40 से अधिक लोगों के मारे जाने की पुष्टि हुई और सैकड़ों घायल हुए, लगभग चालीस हजार की आबादी पलायन के लिए मजबूर हुई। ये आंकड़े सरकारी हैं। मरने वालों की असल संख्या की जानकारी को फिलवक्त दंगे के पोस्टमार्टम की दरकार है।

आखिरकार किस तरह से एक लंबे अंतराल तकरीबन 11 दिन के बाद क़त्लोगारत हुई। गड़बड़ी व साजिश का सिलसिला इस पूरे मंज़र में शुरुआत से ही नज़र आता है। कवाल की घटना के तुरंत बाद उन कुछेक युवकों को गिरफ्तार कर जिन पर कि उस भीड़ में शामिल होने का आरोप था जिसने गौरव और सचिन की हत्या की थी, को जब थाने ले जाया गया तो उसी रात डीएम और एसपी का तबादला क्यों किया गया? दूसरे पुलिस ने शाहनवाज की हत्या के आरोप में गौरव और सचिन के परिजनों के खिलाफ नामजद रिपोर्ट दर्ज की। लेकिन इसके उल्ट गौरव और सचिन की हत्या की रिपोर्ट में किसी को भी नामजद नहीं किया गया? तीसरे जब जिले भर में 28 अगस्त से ही धारा 144 लागू कर किसी भी सभा या पंचायत करने पर पाबंदी लगा दी गई थी तो शुक्रवार, 30 अगस्त को जुमे की नमाज के बाद मुज़फ़्फ़रनगर के खालापार इलाके में पंद्रह हजार के लगभग जनसमूह की सभा और फिर शनिवार, 31 अगस्त को नगला मंदौड़ा गांव में खाप की पंचायत का होना कैसे संभव हो पाया?

यहां इन दोनों सभाओं के संदर्भ में एक बात और विचारणीय है कि एक ओर तो खालापार इलाके की सभा में जिले के डीएम और एसपी भी मौजूद थे और इनके द्वारा सभा समाप्ति के बाद बाकायदा सभा में उपस्थित सपा, बसपा और कांग्रेस के क्रमशः राशिद सिद्दकी, कादिर राणा और सईदुज्जमा नेताओं से ज्ञापन भी लिए गए। इसके उलट 31 अगस्त को होने वाली नगला मंदौड़ा पंचायत रद्द करने के लिए इसी प्रशासन ने दबाव बनाया था और भाकियू के नेता राकेश टिकैत ने इसे स्थगित भी कर दिया था। मौकापरस्तों ने इसका फायदा उठाते हुए 'सभा अवश्य होगी' का प्रचार किया और नंगला मंदौड में यह पंचायत हुई।

जाहिर सी बात है इस तरह की रणनीति हिंदु-मुस्लिमों में दरार पैदा कर वोटों के ध्रुवीकरण हेतु की जा रही थी। अन्यथा ऐसे कोई भी कारण इस पूरे प्रकरण में नज़र नहीं आते जिसमें कि दोनों समुदायों के लोग कवाल में मारे गए लेकिन सत्ता में बैठी सरकार व प्रशासन एकतरफा रवैया अपनाए रहे।

असल में सपा अपना मुस्लिम जनाधार किसी हालत में कांग्रेस के पास खिसकने नहीं देना चाहती थी, इसलिए भी उसने इस पूरे मुद्दे पर ढिलाई बरतने की नीति बनाए रखी ताकि बाद में मसीहा के तौर पर अपने को प्रोजेक्ट कर सके लेकिन सपा उस स्थिति को भांपने में नाकाम रही कि जाटों और मुस्लिमों के बीच विवाद इतने भयंकर दंगों का रूप ले लेगा और पासा उसके खिलाफ ही पड़ जाएगा। इन्हीं दंगों के दौरान अखिलेश यादव एक प्रेस कांफ्रेंस में आजम खान के साथ गोल टोपी पहन कर आए। जहां वह मुज़फ़्फ़रनगर दंगों के बारे में बोल रहे थे। आखिरकार ऐसे हालातों के मद्देनज़र प्रेस कांफ्रेंस में प्रदेश के मुख्यमंत्री का सिर पर टोपी पहनकर आना, कितना वाजिब था?

इसी ढीले रवैये के बीच भाजपा के सरधना से विधायक संगीत सोम द्वारा गौरव और सचिन की हत्या का एक तथाकथित वीडियो फुटेज फेसबुक में डाला गया और उसी की वीसीडी बनाकर भी बांटी गई। असल में यह पाकिस्तान के सियालकोट में गुजरानवाला क्षेत्र में दो जवान भाइयों हाफ़िज़ मोइज़ और हाफ़िज़ मुनीब को सरेआम मौत के घाट उतार दिए जाने का वीडियो था जिसको टी. वी. न्यूजवन के कैमरामैन बिलाल खान ने बनाया था और यही फुटेज बिना किसी सेंसर के यू-ट्यूब में तब साल 2010 में मौजूद था। इसी वीडियो को वर्तमान में मुज़फ़्फ़रनगर के कवाल की घटना से जोड़कर सांप्रदायिक रंग में रगते हुए एडिट कर इसकी वीसीडी बनाई गई और वितरित की गई।

इस पूरे मामले में मीडिया ने भी अपने कर्तव्य का निर्वहन सही ढंग से न करते हुए घटना के अगले दिन के अखबार में मारे गए दोनों युवकों की वीभत्स तस्वीर प्रकाशित कीं साथ ही इस बात को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया गया कि बहन से छेड़खानी का विरोध करने पर उनकी हत्या की गई। इससे हिंदू समाज में गुस्सा और भड़क गया। एक अखबार के मुज़फ़्फ़रनगर एडीशन में लिखा गया कि 'रोकेंगे नहीं, टोकेंगे नहीं', आखिरकार इस तरह की भाषा से क्या संदेश दिया जा रहा था...! इसके अलावा भी मीडिया ने कई चीजों को अभिव्यक्ति दी जिसने अपने आप में प्रचार का काम किया।

इन सबके अलावा सोशल मीडिया का भी इस पूरे प्रकरण में नाजायज फायदा उठाया गया। इस संदर्भ में ऐसी ही एक घटना कुछ समय के बाद फेसबुक में देखने को मिली जिसमें 9 सितंबर के दैनिक जागरण के मुज़फ़्फ़रनगर एडिशन के प्रथम पृष्ठ में पांच कॉलम की खबर ''दंगाइयों को गोली मारने के आदेश'' के साथ छेड़छाड़ कर जनता को भड़काने की कोशिश की गई थी।

कवाल की घटना और 11 दिन के अंतराल ने यूं इतना सांप्रदायिक रंग पकड़ा यह कोई आसान नहीं था। असल में सांप्रदायिक राजनीति के निशाने पर उत्तर प्रदेश और खासकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस सबकी तैयारी काफी लंबे अरसे से चल रही थी। गांवों में विभाजन यूं भी शहरों की बनिस्बत अधिक गहरा है। इसलिए तमाम हिंदूवादी ताकतों ने पश्चिम उत्तर प्रदेश के इलाके को 'मिनी पाकिस्तान' कहकर प्रचारित करना शुरू कर दिया था। खाप पंचायती इलाकों में जहां औरत की इज्जत का मसला बड़े मायने रखता है वहां 'लव जिहाद' और 'बेटी बचाओ' के नाम पर हिंदु-मुस्लिमों के बीच नफरत के बीज बोए जा रहे थे। शुरू में तो यह 'लव जेहाद' बला क्या है, इसका पता ही नहीं चल पाया। ऐसे नए-नए मिथकों को गढ़कर हिंदूवादी ताकतों ने एक सुनियोजित षडयंत्र के तहत यह अफवाह फैलाई कि मुस्लिम लड़के अपनी पहचान छिपाकर भोली-भाली मासूम हिंदू लड़कियों को अपने प्रेम जाल में फंसाकर उनसे शादी करते हैं और बाद में उनका धर्म-परिवर्तन कराते है। यह सब कुछ ऐसे ही था जैसे कि एक झूठ सौ बार बोला जाए तो वह सच हो जाता है। और फिर उस पर यकीन होने लगता है। और ऐसी अफवाहों के चलते सेक्युलर विचारधारा के भी बहुत से लोगों के मन में संदेह ने अपनी जड़े जमानी शुरू कर दीं। ऐसी ही कई अन्य कड़ियां जिनके बलबूते जो ज़मीन तैयार कर फसल बोई गई थी उसे इन दंगों में काटा गया।

फिलहाल ऐसा लग रहा है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हिंसक टकराव का दौर खत्म हो गया है और वह अमन बहाली की दिशा में है लेकिन वास्तविकता में तनाव अंदर ही अंदर व्याप्त है। अगले साल होने वाले लोकसभा चुनावों के मद्देनज़र कोई भी दल इसकी आग को ठंडा नहीं होने देना चाहता है। सब इसमें अपनी-अपनी सियासी रोटियां सेंक जनता के मुद्दों की आहुति देंगे।

बाजार में विवाह

■ अंजलि सिन्हा

घोड़ी या फूलों से लदी कार पर सवार दूल्हा, नाचते-झूमते तरह-तरह के परिधानों से सजे रिश्तेदार, गाने 'आज मेरे यार की शादी है', आगे-आगे बैंडबाजा और एक के पीछे एक सजीली बत्तियों को सिर पर लिए धीरे-धीरे रेंगते गुमनाम-से चेहरे।

कोई झूमने में व्यस्त होता है तो कोई गहनों से लदी महिलाओं के सोने का भार कितना होगा, इसका अंदाजा लगाता रहता है। आमतौर पर शादियों के अनिवार्य हिस्से के तौर पर चलने वाली इस रस्म को लोग भारतीय संस्कृति, रीति-रिवाज आदि के तौर पर महिमामंडित करते हैं।

खबर चौदह साल के किशोर रामू से जुड़ी है जो किसी बैंड के साथ सिर पर लाइट रख कर चलता था। माता-पिता के साथ दिल्ली के गोकुलपुरी के गंगा विहार की झुग्गी में रहने वाले रामू के साथ एक बरात में हादसा हुआ। किसी बरात में लाइट के वजन से उसका पैर लड़खड़ा गया, वह गिर गया और लाइट का तार गले में फंसा। जान तो बची, मगर तार गले में फंसने और खिंचने के चलते उसकी जुबान चली गई। रामू के पिता ने बैंड पार्टी के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। लेकिन कुछ नहीं हुआ। एक बाल श्रमिक को काम पर रखने को लेकर भी कोई कार्रवाई नहीं हुई। लेकिन हाईकोर्ट के एक वकील को रामू के बारे में पता चला और उन्होंने मामले की सुध ली तो अदालत में मामला दर्ज हो गया। अदालत के आदेश से एम्स में उसका इलाज चला। डेढ़ साल तक मूक रहने के बाद उसकी आवाज़ लौटने की उम्मीद बंधी है।

खैर, रामू को न्याय दिलाने के लिए पिता के संघर्ष की खबर में इस बात का कहीं जिक्र नहीं है कि जिस बरात में वह लाइट लेकर चल रहा था, उसमें शामिल बरातियों या दूल्हे के माता-पिता का इस मामले में क्या रुख था। अंदाजा लगा सकते हैं कि बरातियों के लिए वह ऐसी घटना रही होगी, जिसने उनके नाचने-गाने में 'बेवजह खलल' डाल दी और अपने लाड़ले की शादी से गदगद माता-पिता तक बारात में आए इस क्षणिक व्यवधान की खबर भी नहीं पहुंची होगी।

जिस दौर में दुनिया में गहराती आर्थिक मंदी का असर भारत पर भी पड़ा है, उसमें यह खबर आई कि यहां के विवाह समारोह उद्योग में पच्चीस से तीस फीसद की बढ़ोतरी हुई है। बताया जाता है कि भारत के विवाह उद्योग का कारोबार तकरीबन पचास अरब रुपए का है। हमारे समाज में अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाया जाता है। शायद इसीलिए युवा वर्ग प्रेम तो कर लेता है, लेकिन जब साथ रहने और परिवार बसाने की बारी आती है तो वह अपना विवाह समारोह उन्हीं परंपरागत तरीके, तड़क-भड़क और शाहखर्ची के साथ करता है। विडंबना यह है कि ऐसा करना उसे गलत भी नहीं लगता है। दिलचस्प यह है कि आज के भाग-दौड़ भरे जीवन में या अपने गांव-शहर से दूर किसी और शहर में बस गए लोगों को अपने मन-मुताबिक और बड़ी संख्या में बाराती नहीं मिल पाते हैं तो उसके लिए भी ऐसे 'शो रूम' मिल जाएंगे, जहां से अपनी जेब के हिसाब से मनपसंद बाराती एक शाम के लिए किराए पर उपलब्ध हो जाते हैं। पंजाब से ऐसी खबर आई थी कि एक दुकान पर बाजे के साथ बारातियों का भी प्रबंध होता है। सवाल है कि यह सब किसे और क्यों दिखाना और इससे हैसियत ऊंची कैसे होती है?

आजकल हालत यह है कि दुकानें 'कन्यादान पैकेज' का प्रचार करती हैं। गुड़गांव की एक दुकान का प्रचार एक साप्ताहिक अखबार में छपा था कि वहां पंद्रह से बीस हजार में 'कन्यादान पैकेज' उपलब्ध है, जिसमें सामानों की सूची गिनाई गई थी। आधुनिक बालाओं को भी अपने लिए कन्यादान रकम से परहेज नहीं है, जिसमें उन्हें किसी के हाथों में दान-स्वरूप सौंप दिया जाए और साथ में दान का सामान भी मिल जाए। इसमें इन बढ़े हुए प्रचलनों और रिवाजों के नए आयामों ने आम परिवारों पर दबाव कितना बढ़ाया होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

कर्ज देने वाले निजी बैंक और कंपनियां भी प्रेरित करती हैं कि पैसा चाहिए तो ले जाइए आसान किस्तों में! फिर व्यक्ति बाज़ार के ग्लैमर और रुतबा बढ़ाने के आकर्षण में दहेज के सामान में कुछ और बढ़ोतरी कर बैठता है। पिछले दिनों पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गौतमबुद्ध नगर में 'फाइनांसरों' ने दुल्हन के घर जाकर गाड़ियां उठवा लीं, क्योंकि वे लोग कर्ज लेकर ली गई गाड़ी की किस्तें नहीं भर पा रहे थे। एक दूल्हा हेलिकॉप्टर से ससुराल पहुंचा था और दहेज में उसे महंगी गाड़ी मिली थी। लड़की के मां-बाप बाद में किस्तें नहीं चुका पाए, लिहाजा गाड़ी दरवाजे से उठ गई। इस बात को लेकर विवाहित जोड़े में तनाव बढ़ा और रिश्ता टूटने के कगार पर पहुंच गया। ऐसे मामले आम हैं जिनमें कर्ज लेकर शादी करने और दहेज देने के कारण लड़की के माता-पिता ताउम्र आर्थिक संकट से घिरे रह जाते हैं।

साझी विरासत

■ जां निसार अख़्तर

...पिछले अंक से जारी

हमारे धार्मिक नेता :

उर्दू शाइरी ने जहां हिंदुस्तान के सांस्कृतिक, सामाजिक और तहज़ीबी सरमाये को अपने में समोया और उसकी तर्जुमानी की, वहां उसने उन तमाम मज़हबों को, जो हिंदुस्तान में पैदा हुए या जिन्हें हिंदुस्तान में आकर बसने वाली जातियां, अपने साथ लाईं, अपने सर-आंखों पर जगह दी है। इस अध्याय में हमने अवतारों, पैग़म्बरों और धार्मिक नेताओं पर कुछ नज़्में दी हैं जिनके आगे आज भी हिंदुस्तान के करोड़ों जनसाधारण श्रद्धा से सिर झुकाते हैं, जिनकी आराधना और पूजा करते हैं, जिनके बताए हुए उसूलों को अपने लिए मार्ग-दर्शन जानते और मानते हैं। हिंदुस्तानी जीवन का सामाजिक, आर्थिक और नैतिक ढांचा सदियों मज़हबी बुनियादों पर क़ायम रहा है और आज भी हिंदुस्तानी समाज के लिए मज़हब बुनियादी महत्व रखता है। आपस का मेलजोल और रवादारी या दूसरे अर्थों में राष्ट्रीय एकता के पीछे 'मज़हबी रवादारी और मज़हबों की तालीमे-इंसानियत का बड़ा हाथ है। उर्दू अदब और शाइरी कभी धर्मांध और तंग-नज़र नहीं रही। हर धर्म और हर धार्मिक मार्गदर्शक का सम्मान उर्दू शाइरी का शेवा रहा है। जो चंद नज़्में इस संकलन में दी गयी हैं वे शिवजी, रामचंद्रजी, कृष्ण, गौतम, महावीर स्वामी और गुरु नानक के अलावा ईसा मसीह और हज़रत मुहम्मद के गुणों और विशेषताओं से संबंधित हैं। रामचंद्रजी अगर बदी के खिलाफ़ लड़ते हैं तो श्रीकृष्ण उपद्रव और हंगामे के ख़ात्मे पर तुले नज़र आते हैं ताकि एक स्वस्थ समाज जन्म ले सके जहां किसी के अधिकार न छिन सकें। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी जंग से नफ़रत करना सिखाते हैं और अम्न, शांति और अहिंसा की शिक्षा देते हैं। हज़रत ईसा अगर पीड़ित मानवता का सहारा बनते हैं तो हज़रत मुहम्मद इंसानी बिरादरी को बराबरी का सुनहरा उसूल बताते हैं और गुलामी की लानत और रंग और नस्ल के अंतर को समाप्त करके मानवता की प्रतिष्ठा को बढ़ाते हैं। गुरु नानक का पैगाम उस एकता और मेलजोल का द्योतक है जो बंटी हुई मानवता को एकत्व के रिश्ते में पिरो देना चाहता है। वास्तविकता यह है कि विश्वास और रीति-रिवाज़ को छोड़कर हर धर्म के संस्थापक का बुनियादी जज़्बा एक ही रहा है कि इंसान सहयोग करे और परस्पर प्रेम और रवादारी के रिश्ते में बंध जाए। उर्दू शाइरी ने न केवल तमाम मज़हबी मार्गदर्शकों पर श्रद्धापूर्ण नज़्में लिखी हैं बल्कि तमाम इलहामी और मज़हबी किताबों के छन्दोबद्ध अनुवाद भी पेश किये हैं।

मुंशी शंकरदयाल 'फ़रहत', मुंशी जगन्नाथ 'ख़ुशहर', मुंशी द्वारकाप्रसाद 'उफ़ुक', इक़बाल वर्मा 'सहर' हंगामी, रामसहाय 'तमन्ना' के रामायण के अनुवाद; मुंशी तोताराम 'शायां' का महाभारत का अनुवाद; मुंशी लक्ष्मण प्रसाद 'सदर' लखनवी, 'सनोबर' अज़ीमाबादी, देवकीनन्दन 'मुब्तदी', जाफ़र अली ख़ां 'असर', 'मुनव्वर' लखनवी के गीता के अनुवाद; ख़्वाजा मुहम्मद 'दिल' का 'जपजी साहब' का अनुवाद; विशेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर' के 'इंजील', जैनी ग्रंथ और क़ुराने-पाक की विभिन्न आयतों के अनुवाद या 'सीमाब' की 'वही-ए-मंजूम' वग़ैरा उर्दू शाइरी का वह पवित्र सरमाया है जिसे वह गर्व के साथ पेश कर सकती है। इन नज़्मों का अध्ययन हमारा सर ऊंचा कर देता है। जब हम देखते हैं कि मुसलमान शाइरों ने राम, कृष्ण, गौतम, महावीर स्वामी और गुरु नानक पर नज़्में कही हैं, और हिंदू और सिख शाइरों ने अमीर ख़ुसरों को अपनी श्रद्धा का मंजूम नज़राना पेश किया है। ये रस्मी रचनायें नहीं हैं बल्कि जिस जज़्बे, निष्ठा और श्रद्धा की ओर ये इशारा करती हैं उनमें रूह और दिल की गहराइयां बसी हुई हैं। उर्दू शाइरी के सेक्यूलर मिज़ाज की इससे बढ़कर और क्या दलील हो सकती है! 'मुहसिन' काकोरवी ने जो क़सीदा 'मदहे-ख़ैरुल-मुरसलीन' हज़रत मुहम्मद की शान में कहा है उसकी तशबीब (प्रारंभिक भाग) की बुनियाद हिंदुओं के पवित्र स्थानों और उनके धार्मिक संस्कारों पर रखी है। यह क़दम एक ख़ास महत्व रखता है और इसे उस मिली-जुली सभ्यता की देन कहना चाहिए जो हर एक रूप में उर्दू शाइरी सदियों से अपनाती चली आ रही है।

हमारी कथायें :

इस अध्याय को हमने दो भागों में बांट दिया है।

पहले भाग में कुछ धार्मिक कथायें पेश की गयी हैं जो उर्दू मस्नवियों या उर्दू नज़्मों से ली गयी हैं और जिन्हें किताब के कलेवर को ध्यान में रखकर संक्षिप्त करके दिया गया है। इस भाग में 'नज़ीर' का कहा हुआ-'जन्म कन्हैयाजी' 'हर की तारीफ़ में' जो दरअसल 'नरसी की दास्तान' है-शामिल है। 'चकबस्त' की नज़्म 'रामायण का एक दृश्य' है, मुंशी बनवारीलाल 'शोला' का 'सीता-हरण' और 'मुनव्वर' लखनवी द्वारा अनूदित जयदेव कृत गीतगोविन्द से दो टुकड़े, 'राधा आलमे-फ़िराक़ में' और 'कृष्ण और राधा की मुलाक़ात' शामिल किये गये हैं। इन नज़्मों पर नज़र डालिये तो मालूम होगा कि 'नज़ीर' भारतीयता के रंग में पूर्ण रूप से रंगे हुए हैं। यह कहना कुछ बेजा न होगा कि उनकी शाइरी अपने युग की सबसे अधिक सेक्यूलर शाइरी थी। उन्होंने बिला तफ़रीक़ हर मज़हब और मिल्लत को अपने सीने से लगाया है। अगर उन्हें हज़रत मुहम्मद से अक़ीदत है तो शिवजी, राम और नानक से भी लगाव है। भारतीयता के जो गहरे और सुंदर चित्र उनके कलाम में फैले हुए हैं वे हमारे बहुमूल्य विरसे की हैसियत रखते हैं। 'चकबस्त' ने रामायण का जो सीन नज़्म किया है वह उर्दू शाइरी में बहुत सुंदर वृद्धि है। रामायण का महत्व भारतीय समाज में असीम है। वाल्मीकि की रामायण संस्कृत में थी, लेकिन तुलसीदास ने संस्कृत के बजाय अवधी भाषा को अपनाकर रामायण के संदेश को करोड़ों दिलों तक पहुंचा दिया। यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं कि तुलसीदास ने रामायण में अरबी और फ़ारसी शब्दों को निस्संकोच इस्तेमाल किया है-मस्लन गरीबनवाज (ग़रीबनवाज़) मिस्कीन, जहान, दीवान, बरात, शहनाई, सरताज, रुख, दफ़ वगैरा। हक़ीक़त यह है कि रामचरितमानस या रामायण का प्रभाव भारत की सब भाषाओं पर पड़ा है। हम ऊपर कह आये हैं कि रामायण के कितने अनुवाद गद्य और पद्य में उर्दू में हुए। इनके अलावा कितनी नज़्में रामायण की घटनाओं से प्रभावित होकर लिखी गईं, उन्हीं में से 'चकबस्त' की यह नज़्म है। 'चकबस्त' के अलावा मुंशी दुर्गा सहाय 'सुरूर' जहानाबादी और तिलोकचंद 'महरूम' और मुंशी बनवारीलाल 'शोला' ने भी रामायण के विभिन्न दृश्य कविताबद्ध किये जिनमें से 'शोला' का 'सीताहरण' इस संकलन में सम्मिलित है। 'मुनव्वर' लखनवी ने जो जयदेव के गीतगोविन्द का अनुवाद किया है उसमें से भी दो टुकड़े लिये गये हैं। जयदेव, जिसकी यह लंबी नज़्म संस्कृत में है, बारहवीं सदी के प्रारंभ में हुआ था। इसमें राधा और कृष्ण की शारीरिक और आध्यात्मिक मुहब्बत का संगम जिस दैवी पवित्रता से बयान हुआ है उसने इस किताब को अमर प्रेम की दास्तान बना दिया है। उर्दू शाइरी ने इन तमाम अदबी जवाहरों को अपने दामन में भर रखा है जिस पर भारतीय साहित्य ही नहीं सारी दुनिया का अदब नाज़ कर सकता है। यह नहीं कि केवल कालिदास ही की नज़्में उर्दू में परिवर्तित हुई हैं बल्कि हिंदुस्तान की कथाओं पर आधारित कितनी ही अनूदित और कितनी ही मौलिक रचनायें मौजूद हैं। मस्लन इक़बाल वर्मा 'सहर' की 'दुष्यन्त-ओ-शकुन्तला'; 'जिगर' बरेलवी की मस्नवी 'पयामे सावित्री' जो सावित्री और सत्यवान की दास्तान है; रंगलाल 'चमन' की 'सिंघासन बत्तीसी' जो सीधे संस्कृत से ली गयी है और 1864 ई. में छपकर सामने आई। इसी के साथ 1886 में मक्खनलाल की 'सिंघासन बत्तीसी' प्रकाशित हुई। 'नल-दमन' के भी कितने मंजूम एडीशन उर्दू में मौजूद हैं जिनमें 'राहत', अहमद अली 'अहमद' और कालीप्रसाद का नाम लिया जा सकता है। 'इब्रत' की 'पद्मावत' और मुहम्मद अली क़ासिम की 'पद्मावत' भी उर्दू नज़्म में मौजूद हैं। सन् 1871 ई. में अरोड़ाराय ने 'सोनी-महिवाल' का मंजूम तर्जुमा लाहौर से प्रकाशित किया था। मूलचंद मुंशी और मौल्वी करम इलाही भोपाली के मंजूम 'हीर-रांझे' भी हमें मिलते हैं। यही नहीं बल्कि ईसाइयों की 'फ़िरदौसे-गुमशुदा', 'फ़िरदौसे-बाज़याफ़्ता' और 'शमज़न महजू' का अनुवाद भी ईसाचरन 'सदा' ने उर्दू नज़्म में किया हुआ है। बहरहाल ये तो चन्द नाम हैं वरना इस प्रकार का अदबी सरमाया उर्दू में बेहिसाब है। कालिदास के जो अनुवाद इस संकलन में शामिल हैं उनमें एक तो उनके मशहूर ड्रामे 'कुमारसंभव' का एक टुकड़ा है जिसके अनुवादक 'मुनव्वर' लखनवी हैं। एक टुकड़ा उनके जगत्-प्रसिद्ध ड्रामे 'शकुंतला' से लिया गया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद लगभग हर सुसंस्कृत भाषा-अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन, अरबी, फ़ारसी वगैरा में हो चुका है। 'मुनव्वर' लखनवी के अनुवाद का आधार यद्यपि असली ड्रामे पर है लेकिन उन्होंने राजा लक्ष्मणसिंह के अनुवाद से ख़ासा लाभ उठाया है। इस अनुवाद के बारे में डॉक्टर ज़ाकिर हुसैन ने कहा था-''कहीं यह महसूस नहीं हुआ कि यह एक बाकमाल उर्दू शाइर का कलाम नहीं है।'' 'मेघदूत' का अनुवाद हाफ़िज़ ख़लील हसन 'ख़लील' का किया हुआ है जो 1914 में आगरा से प्रकाशित हुआ था। कोई शक नहीं कि ख़लील हसन ने मस्नवी के अंदाज़

में कालीदास की इस हसीन-ओ-जमाल नज़्म को मुन्तक़िल करने का हक़ अदा कर दिया है।

हमारा अंदाज़े-इश्क़ :

उर्दू शाइरी में इश्क़ का विषय हमेशा से लोकप्रिय रहा है। यह कहना ग़लत न होगा कि उर्दू शाइरी के प्रिय विषयों में भी इस विषय को प्रधानता प्राप्त है। उर्दू की इश्क़िया शाइरी पर तरह-तरह के आरोप लगाए जाते हैं लेकिन चन्द शाइरों के गिरे हुए चिंतन-स्तर को पूरी उर्दू शाइरी पर नहीं थोपा जा सकता। इश्क़ की कल्पना उर्दू शाइरी में उच्चतम मानसिक सतह को छूती रही है। इससे इनकार अन्याय होगा। इश्क़ दरअसल उस तीव्र अनुभूति का नाम है जो बुनियादी तौर पर जिन्सी होते हुए भी इंसानी ज़िंदगी का उच्च नफ्सियाती और नैतिक सतहों पर असरअंदाज़ होती है और जो स्वभाव, चरित्र और व्यक्तित्व को बनाने और संवारने में अहम रोल अदा करती है। यही आशिक़ाना अनुभूति जब विश्वव्यापी कल्पना से हमआहंग होती है तो उसमें एक महानता आ जाती है। शाइरी की महानता और उच्चता का रहस्य भी इसी में छिपा हुआ है। इश्क़ की जलन जब ज़िंदगी की जलन में ढलती है तो महान शाइरी की बुनियाद बनती है। उर्दू अदब में इश्क़ या इश्क़िया शाइरी की कौन-सी सतहें हमारे सामने आती हैं इस पर एक नज़र डालना ज़रूरी है। शुरू में दकनी उर्दू में जो ग़ज़ल कही गयी उसमें मर्द और औरत की परस्पर मुहब्बत की खूबसूरत झलकियां मिलती हैं। कुली कुतुबशाह की ग़ज़लें हों या 'वली' की प्रारंभिक ग़ज़लें, उनमें इश्क़ की एक सभ्य भावनात्मक सतह का अहसास होता है-

वली उस गौहरे-काने-हया की क्या कहूं ख़ूबी
मिरे घर इस तरह आता है ज्यूं सीने में राज़ आवे

दकनी ग़ज़ल में हमें हिंदी लहज़ा और हिंदुस्तानी तत्व साफ़ दिखायी देते हैं। लेकिन यह बात याद रखनी चाहिए कि इश्क़िया ग़ज़ल की बुनियाद अगर कुछ है तो मुहब्बत की रूह है। इसीलिए प्रो. मसूद हसन रिज़वी ने श्रेष्ठ इश्क़िया शेरों को 'रूहे-मुहब्बत की तस्वीरें' कहा है। उर्दू की इश्क़िया ग़ज़ल का एक पहलू तो वह है जो हुस्न और इश्क़ के मामलात और कैफ़ियात से सीधा संबंध रखता है। एक पहलू वह है जिसे फ़लसफ़ियाना (दार्शनिक) या आरिफ़ाना कह सकते हैं। और तीसरा पहलू वह है जो विजदानी सतह पर हयात और कायनात के ब्रह्मज्ञान की आईनादारी करता है। 'मीर' की ग़ज़ल में इश्क़ फ़लसफ़ियाना या आशिक़ाना अंदाज़ में हमारे सामने नहीं आता। यद्यपि अपनी मस्नवियों में कई जगह 'मीर' दश्क़ को हयात-ओ-कायनात का बुनियादी कारण बताते हैं जिसका एक उद्धरण भी हमने इस अध्याय में एक जगह दिया है लेकिन वास्तव में 'मीर' इश्क़ को आम इंसानी सतह पर देखते थे। यह ज़रूर था कि वह 'मजनूं' गोरखपुरी के शब्दों में -''इश्क़ को हुस्न का परस्तार समझते हुए भी एक प्रमुख और अधिक सुसंस्कृत शक्ति मानते थे।'' वह इश्क़ के नाम पर मर मिटने का जज़्बा रखते हैं। 'मीर' ने ग़मे-इश्क और ग़मे-ज़िंदगी दोनों का मुक़ाबला करने का हौसला और मानसिक शक्ति दी है। उनके यहां आनंद का पहलू नहीं है तो इसका कारण उनके ज़माने के प्रतिकूल हालात और खुद उनके इश्क़ की नाकामी है। हमने इस संकलन में 'मीर' की ग़ज़लें और कुछ शेर दिये हैं जिनसे 'मीर' के अंदाज़े-इश्क़ पर रौशनी पड़ती है। उर्दू शाइरी में इश्क़िया शेरों की संख्या लाखों से भी अधिक है, इसलिए हर शाइर के कलाम को पेश करना मुमकिन न था। कुछ ग़ज़लों, कुछ नज़्मों और कुछ रुबाइयों पर ही संतुष्टि कर ली गयी है। 'मीर' के बाद ग़ालिब की महान शाइरी हमारे सामने आती है। उनके यहां 'मीर' की नश्तरियत तो नहीं, अलबत्ता एक ऐसी सलीक़ामंद नज़र मिलती है जो इश्क़, बल्कि पूरी हयात और कायनात से परिचित है। हुस्नो-इश्क के विषयगत वार्तालाप की मिसालें ग़ालिब के कलाम में हसीन से हसीनतर मिलती हैं :

नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी हैं
तेरी जुल्फें जिसके बाजू पर परीशां हो गईं

जो ग़ज़ल इस इन्तिख़ाब में शामिल हैं उसमें इश्क़ के लिए एक ऐसी तड़प का एहसास है जो शोक और हर्ष के पहलुओं को बड़े संतुलित और फ़नकारी के साथ अपने में समोए हुए हैं। यह न भूलना चाहिए कि ग़ालिब की शाइरी हुस्नो-इश्क़ की नफ़्सियत तक सीमित नहीं बल्कि बक़ौल आले अहमद सुरूर-''उर्दू शाइरी में ग़ालिब से बड़ा ज़िंदगी का आशिक़ और आरिफ़ शायद ही कोई मिले।'' ग़ालिब के विपरीत जब हम 'दाग़' की शाइरी पर आते हैं तो हमें जो मिलता है वह 'खुली-खुली इश्क़िया शाइरी' है। 'दाग़' पर विलासिता की भावना का इल्ज़ाम रखा जाता है लेकिन उनकी चुनी हुई आशिक़ाना ग़ज़लें या शे'र उन्हें इश्क़िया शाइरी में एक स्थान देते हैं। यह सच है कि उन्हें आम इश्क़िया शे'रों में उस जागीरदाना सभ्यता का एहसास होता है जो उर्दू की इश्क़िया मस्नवियों में भी रचा-बसा है।

बहरहाल 'दाग़' की शाइरी जिस पाए की भी मानी जाए, वह भी हर एक के बस की बात नहीं। 'हसरत' मोहानी ने आशिक़ाना शाइरी को 'दाग़' की अपेक्षा यक़ीनन शाइस्तातर बनाया है। वह भी इश्क़ को आस्मानी या उलूही चीज़ नहीं समझते। सिर्फ़ एक सच्चे और मु ख़लिस आशिक़ के रूप में हमारे सामने आते हैं। वह सादगी, विनम्रता और निष्ठा को इश्क़ का जौहर समझते हैं। हुस्नो-इश्क़ से संबंधित वस्तुगत वार्तालाप में उनके यहां भी ख़ूबसूरत तहज़ीबी झलकियां मिलती हैं। 'हसरत' के बाद हमने 'फ़िराक' की ग़ज़ल और शे'र दिये हैं। 'फ़िराक़' का तसव्वुरे-इश्क़ बुनियादी तौर पर ज़मीनी है लेकिन उनके जमालियाती और विजदानी एहसास ने उसे एक बलन्द सतह दी हैं अतएव इश्क़ की कैफ़ियतें हयात और कायनात से हमआहंग नज़र आती हैं और हम ऐसा महसूस करते हैं कि इश्क़ मिलन और विरह की कैफ़ियतों से अलग ज़िंदगी का पर्यायवाची बन गया है। उनके यहां जिंसी जज़्बा एक ऐसी पवित्रता और स्वच्छता लिये हुए हमारे सामने आता है कि तल्लीनता और आश्चर्य की कैफ़ियत पैदा हो जाती हैं उनके इश्क़या शे'रों में अक्सर महसूस होता है कि अछूती बलन्दियां और अनजानी वुसअतें सिमट आई हैं।

इश्क़िया नज़्मों में हमने सबसे पहले 'इक़बाल' की नज़्म 'मुहब्बत' दी है जिसमें मुहब्बत या इश्क़ का एक आसमानी तसव्वुर मिलता है। 'इक़बाल' की शाइरी में इश्क़ दरअसल एक दार्शनिक परिभाषा बन गया है और ऐसी रहस्यमयी शक्ति के समान है जो कायनात की रचना और जीवन के विकास की मंज़िलें तय करने में सहयोगशील है-

सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क़ के इम्तिहां और भी हैं

'इक़बाल' से जब हम 'जोश' पर आते हैं तो हम फिर ज़मीनी इश्क़ से दो-चार होते हैं। 'जोश' लाख 'शाइरे-इंक़िलाब' कहें जाएं लेकिन जहां उनकी शाइरी अपनी चरम सीमा को छूती है वह मंज़र-निगारी या हुस्नो-इश्क़ की वारदातें हैं। इश्क़ का तसव्वुर उनके यहां शारीरिक आकर्षण और नफ़सियाती बारीकियों के दायरे से आगे नहीं बढ़ता। वह बुनियादी तौर पर रूमानियत के शाइर हैं। उनकी नज़्मों में बक़ौल 'फ़िराक़'-''रूमानियत छत्तीसों सिंगार के साथ अपनी छवि दिखाती हुई सामने आती है।'' उनकी नज़्म 'अश्के-अव्वलीं' और उनके शे'र 'हनोज़' से उनके आशिक़ाना तर्ज़ का पूरा अंदाज़ा लगाया जा सकता है। 'अख्तर' शीरानी भी रूमानी शाइर हैं। उनकी प्रारंभिक नज़्मों में तो महबूबा से ज़्यादा महबूबा का तसव्वुर प्रिय नज़र आता है। आगे चलकर भी 'अख्तर' की शाइरी चाहने और चाहे जाने की लज़्ज़त और ख़्वाहिश से आगे नहीं बढ़ी लेकिन इश्क़ और इश्क़ की वारदातें जिस सरशारी और क़ैफ से उनके यहां बयान हुई हैं उनमें एक जादू ज़रूर पाया जाता है जो थोड़ी देर के लिए सब कुछ भुला देता है। 'फ़ैज़' इश्क़ में भी गम्भीरता और गरिमा को ध्यान में रखते हैं। उनके यहां इश्क़ का तसव्वुर विशाल होकर ग़मे-जहां को भी अपने दामन में समेट लेता है। उनकी अक्सर नज़्मों में यह सम्मिश्रण बड़े कलात्मक ढंग से हमारे सामने आता है। 'मजाज़' की आशिक़ाना नज़्मों में कोई चिंतन या दर्शन के तत्व की मिलावट तो नहीं अलबत्ता इश्क़ की परिचयात्मक तर्जुमानी ज़रूर है। 'जांनिसार' अख़्तर की नज़्म 'महकती हुई रात' में वह पहलू सामने आता है जब दो चाहने वाले दिलों ने एक-दूसरे की संगति में ज़िंदगी का लंबा समय गुज़ारा हो और जीवन-संघर्ष में लगातार शरीक रहे हों। यह नज़्म इश्क़ की ज़िंदगी का एक कामयाब और स्वस्थ नज़रिया पेश करती है। इसके प्रतिकूल 'मखदूम' की नज़्म 'चारगर' सामाजिक बंधनों के वातावरण में इश्क़ की ग़मगीन कहानी बयान करती है। 'कैफ़ी' की नज़्म 'अंदेशे' भी हमारे समाज के उस निर्दयी रवैये से संबंध रखती है जो औरत को मुहब्बत की आज़ादी नहीं देता और जहां औरत अपनी मुहब्बत को सीने में दफ़न करके ज़िंदगी से समझौते पर मज़बूर हो जाती है। इस नज़्म में औरत की जज़्बाती कैफ़ियात की ख़ूबसूरत अक्कासी की गयी है। इसके अलावा 'मजरूह' की एक हर्षप्रद ग़ज़ल है और कुछ बन्द 'साहिर' की 'परछाइयां' से लिये गये हैं। इनमें चन्द रूमानी क्षणों की हसीन मुसव्विरी है। साथ ही जज़्बाती फ़िज़ा का अहसास भी होता है।

आशिक़ाना रुबाइयात में कुछ रुबाइयां 'फ़िराक़' के कलाम से ली गयी हैं। 'फ़िराक़' की ग़ज़लों में जिस तरह इश्क़ की व्यापकता का एहसास होता है उसी तरह उनकी रुबाइयों में हुस्न अपनी नक़ाब उलट देता है। ऐसा लगता है कि 'फ़िराक़' ने हुस्न को सिर्फ देखा ही नहीं अपने सारे अस्तित्व से अनुभव किया है। डॉक्टर गोपीचंद नारंग ने सही लिखा है कि ''फ़िराक़ हुस्नो-जमाल की बोलती हुई रूह के शाइर हैं।'' उनकी रुबाइयों में जो हिंदुस्तानी सभ्यता और उसकी जमालियाती क़द्रें मिलती हैं वे कहीं और नज़र नहीं आतीं। 'जांनिसार' अख़्तर की रुबाइयां 'फ़िराक़' की तरह

शृंगार रस की रुबाइयां नहीं। उनका विषय दाम्पत्य जीवन का रूमान है। 'फ़िराक़' के शब्दों में 'इन रुबाइयों में हिंदुस्तान के लगभग पन्द्रह करोड़ घरों और घरेलू जीवन की नर्म-ओ-नाज़ुक झलकियां दिखायी गयी हैं। ये विषय और उसके हज़ारों पहलू सूरदास के पदों में दिखाए गये हैं। 'जांनिसार' अख़्तर ने यही नेमत हमें इन रुबाइयों में देकर हम सब पर बड़ा एहसान किया है।'

इस अध्याय का मक़सद दरअसल एक झलक पेश करना था उस इश्क़या शाइरी की जो अपने चित्र-विचित्र और रंगारंग पहलुओं के साथ उर्दू में रची-बसी है और जो हमारे मशरिक़ी या हिंदुस्तानी मिज़ाज की ग़म्माज़ रही है।

हर्फ़े-आख़िर :

यह पुस्तक उर्दू शाइरी के उस स्थूल सरमाये की एक झलक है जो हमारी मिली-जुली सभ्यता की आईनादार है। यह यथार्थ है कि इस किताब का हर अध्याय एक अलग ग्रंथ की रचना चाहता है। इसके अलवा उर्दू शाइरी के कई ऐसे पहलू और भी हैं जिन्हें इस सिलसिले में पेश किया जा सकता था। मसलन उन नज़्मों के चयन का भी एक अध्याय संपादित किया जा सकता था जिनमें हिंदुस्तानी रीति-रिवाज़, मजलिसी शिष्टाचार, शादी-ब्याह के तौर-तरीक़ों के विवरण मौजूद हैं। हिंदुस्तान के सब धर्मों की पवित्र पुस्तकों के मंजूम (पद्यात्मक) अनुवाद के उद्धरण भी शामिल किए जा सकते थे लेकिन फ़िलहाल प्रकाशन की मजबूरियों के कारण ऐसा करना मुमकिन नहीं हो सका। फिर भी यह किताब उर्दू शाइरी के बारे में बहुत-सी बदगुमानियों और ग़लतफ़हमियों को दूर करने में ज़रूर मदद करेगी। वे लोग जो उर्दू को लस्सानी तौर पर हिंदी-उल-अस्ल और हिंदी-उल-नस्ल मानने के बावजूद उसके एक 'विशेष सांस्कृतिक' मिज़ाज की बात करते हैं उनसे हम इस किताब को पेश करते हुए सिर्फ़ इतना ही कहना चाहते हैं कि बेशक ज़बान का एक सांस्कृतिक स्वभाव होता है लेकिन हमें ऐतिहासिक सत्य को सामने रखने की ज़रूरत है। हम मानते हैं कि जब मुसलमान शासक के रूप में मौजूद थे और फ़ारसी ज़बान सरकारी ज़बान थी तो उर्दू पर फ़ारसी का प्रभाव पड़ा लेकिन यह प्रभाव पड़ना तारीख़ी तौर पर अनिवार्य था। सोलहवीं और सतरहवीं सदी की दकनी शाइरों में जो हिंदीयत असली तत्व के रूप में शामिल थी वह सूरत उत्तर भारत में न थी। अलबत्ता इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यहां हिंदीयत और ईरानियत का सम्मिश्रण मौजूद था। आगे चलकर एक समय फ़ारसीयत का आधिपत्य भी हुआ, लेकिन क्या अंग्रेज़ों के शासनकाल में उर्दू भाषा और उर्दू शाइरी पर अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव नहीं पड़ा? यह भी ऐतिहासिक तौर पर होना अनिवार्य था और आज जब हमारे ऐतिहासिक हालात बदल चुके हैं; फ़िरंगी सियासत, जो हिंदुस्तानी क़ौमों की ज़िंदगी के एक-एक विभाग को तक़सीम करने पर तुली हुई थी, फ़ना हो चुकी है; नई स्थिति में क्या उर्दू भाषा अपने प्राचीन सांस्कृतिक प्रभाव से बाहर निकलकर आधुनिक सांस्कृतिक प्रभाव न अपनायेगी? उर्दू अदब और शाइरी का गहरी नज़र से अध्ययन करने वाले आज भी यह बात अनुभव करते हैं कि उर्दू शाइरी का मिज़ाज बदलने लगा है और हम समझते हैं कि वह दिन दूर नहीं जब उर्दू शाइरी का सांस्कृतिक मिज़ाज सही मानों में संतुलित हिंदुस्तानी मिज़ाज कहा जाएगा। हम 'दाग़' की बात को तो दोहराना नहीं चाहते कि-

कहते हैं उसे ज़बाने-उर्दू
जिसमें न हो रंग फ़ारसी का

क्योंकि यह भी सच है कि फ़ारसी रंग ने भी उर्दू को बहुत कुछ दिया है जो सीने से लगाए रखने के क़ाबिल है। लेकिन हम यह स्वीकार करते हैं कि आज उर्दू वालों को संस्कृत-साहित्य से भी बहुत कुछ लेना है। 'फ़िराक़' गोरखपुरी लिखते हैं कि 'हमारी उर्दू ज़बान में कितनी विशालता और कितनी बड़ी संभावनाएं पैदा हो जाएंगी अगर उर्दू शब्दकोश में दो-ढाई हज़ार संस्कृत के शब्द भी शामिल कर लिये जाएं। कितनी शक्ति और फैलाव, कितनी तहें, कितनी झलकियां और परछाइयां, कितना रस, कितनी सुगंध, कितना रचाव, कितनी सुगढ़ता, कितनी नई गूंजें, कितना सलीक़ा, कितना प्रवाह और ठहराव, कितना लोच और लचक उर्दू में पैदा हो जाएंगी अगर संस्कृत शब्दों की किरनों की खनक भी अरबी, फ़ारसी और हिंदी शब्दों की खटक, रस और झंकार के साथ साज़े-उर्दू से सुनाई देने लगे।' हम समझते हैं कि इन शब्दों की मिलावट से केवल उर्दू शब्दकोश को ही लाभ न पहुंचेगा बल्कि इस वृद्धि के द्वारा साहित्य और शाइरी हिंदुस्तान की रूह को और गहरे तौर पर अपने में समो सकेगी।

हिन्दोस्तां हमारा भाग-1 की भूमिका से साभार

भारत में मुगलों का आधिपत्य

■ मुक्तिबोध

पिछले अंक से जारी

भारत में बसने के उद्देश्य से मुग़लों ने भारत में प्रवेश किया। उन दिनों देश में अनेकानेक शक्तिशाली मुस्लिम और राजपूत राज्य थे। प्रारंभिक मुग़ल शासकों को युद्ध ही युद्ध करना पड़ा। फिर भी अब तक आये हुए विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं में वे ही सर्वाधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे। भारत की युद्ध-विद्या के इतिहास में पहली बार तोपों का प्रयोग हुआ। वह बाबर द्वारा किया गया। इस काल का एक उज्ज्वल रत्न मुग़ल शासक न होकर अफ़गान सुल्तान शेरशाह सूरी है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य ग्रंथ पद्मावत में शेरशाह के संबंध में कहा-''सेरसाहि देहली सुलतानू, चारिउँ खंड तपै जस भानू।'' - वह भारत के महान शासकों में से है।

चौदहवीं सदी के अंत में मध्य एशिया के फ़रग़ाना नामक रियासत का शासक बाबर था। वह तैमूरलंग का वंशज था। अपनी रियासत की रक्षा के लिए, उसे पास-पड़ोस की रियासतों से लड़ना पड़ता। ये रियासतें उसी के संबधियों की थीं। उनसे तंग आकर वह एक दिन अपनी सेनाओं के साथ, नया राज्य जमाने के लिए निकल पड़ा। उसने अपनी जन्मभूमि का त्याग कर दिया। हिन्दूकुश के पर्वतों को पार कर उसने काबुल को जीत लिया। कुछ ही दिनों बाद उसने भारत की ओर प्रयाण किया।

उन दिनों दिल्ली के अफ़ग़ान सुल्तान निर्बल थे। गुजरात मालवा और बंगाल में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य थे। सन् 1525 में उसने दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को पराजित किया और भारत में मुग़ल वंश की स्थापना की। मंगोल शब्द ही का बिगड़ा हुआ रूप-'मुग़ल' है।

किंतु, बाबर को तब तक चैन नहीं हो सकता था जब तक वह मेवाड़ के राणा सांगा से मोर्चा न ले। राणा सांगा बहुत अनुभवी और पराक्रमी था। सांगा की दृष्टि भी दिल्ली ही पर थी। उसके नेतृत्व में राजपूत राज्यों का एक संघ था। भारत के शक्तिशाली राज्यों में से एक मेवाड़ भी था।

युद्ध होना अनिवार्य था। दोनों पक्ष इसे समझ रहे थे। राजपूत नरेशों ने उत्साहपूर्वक राणा सांगा का साथ दिया। सन् 1527 में सीकरी में घमासान युद्ध हुआ।

बाबर ने तोपों का प्रयोग किया। भारतीय इतिहास में तोपों के प्रयोग की यह पहली घटना थी। राजपूतों के तलवार और भाले तथा व्यक्तिगत पराक्रम किसी काम न आए। भारतीय युद्ध-विद्या कमज़ोर थी। मुग़ल युद्ध-कला अधिक विकसित थी।

राणा सांगा की पराजय के बाद, बाबर को राजपूताने पर कब्ज़ा करने में ज़्यादा देर न लगी। इसके बाद, उसने बिहार और बंगाल को भी जीत लिया और सन् 1530 तक अपनी मृत्यु के पहले, उसने सारे उत्तर भारत में अपना साम्राज्य फैला दिया।

हुमायूं

किंतु, मुग़ल साम्राज्य को दृढ़ होने में अभी देर थी। हुमायूं के राज्यारोहण के तुरंत उपरांत, अनेक प्रांतों में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। बिहार में शेर खां नामक बहादुर अफ़गान सरदार ने बगावत कर दी, जिसे दबाने के लिए हुमायूं बिहार की ओर बढ़ा। उसका दमन करके ज्यों ही वह लौटा कि उसे खबर मिली कि गुजरात में विद्रोह हो गया है। हुमायूं सेना सहित गुजरात की तरफ़ रवाना हुआ। इस बग़ावत से फ़ायदा उठाकर, शेर खां ने फिर से अपनी ताक़त बढ़ा ली। गुजरात की लड़ाई में हारा-थका हुमायूं जब दिल्ली में थोड़ी आराम की सांस ले रहा था कि शेर खां ने दिल्ली पर हमला बोल दिया। हुमायूं को दिल्ली छोड़ देनी पड़ी। वह राजस्थान होते हुए ईरान चला गया। शेर खां-शेरशाह सूरी के नाम से-दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। यह घटना सन् 1540 की है। शेरशाह सूरी के वंश ने सिर्फ 15 वर्षों तक राज्य किया।

शेरशाह सूरी

यह सुल्तान भारत के महान् शासकों में से है। उसने अपने राजत्व के अल्पकाल में ही अनेक निर्माण-कार्य किये। उसने बंगाल से पंजाब तक बहुत बड़ी सड़क बनायी, उनके दोनों ओर पेड़ लगवाए, जगह-जगह सरायें बनायीं, वहां कुएं खुदवाये। इन सरायों में हिंदू और मुसलमान दोनों प्रकार के यात्रियों के लिए रहने की व्यवस्था थी। सरायों में हिन्दुओं के लिए भोजन की अलग व्यवस्था थी और भोजन बनाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया। साथ ही, यात्रियों के जानवरों के लिए घास आदि का बन्दोबस्त किया। प्रत्येक सराय में मुसलमानों के लिए मस्जिद भी बनायी।

राज्य-शासन की सुव्यवस्था के लिए उसने अलग-अलग महकमे बनाये। न्याय और सहिष्णुता की भावना से प्रेरित होकर, उसने हिंदुओं को अपनी ओर मिला लिया।

देश की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए उसने बहुत-से प्रयत्न किये, जिसमें भूमि-कर-सुधार प्रमुख है। राज्य के नागरिकों की रक्षा के लिए उसने बाक़ायदा पुलिस विभाग का संगठन किया। अगर इस विभाग के अधिकारी-गण खून या चोरी की ठीक जांच करके अपराधी को पकड़ न पाते तो उन्हें ही कठोर दंड दिया जाता।

शेरशाह ने कहा-''धर्म-विधियों में सर्वश्रेष्ठ निधि है-न्याय। मुसलमान राजाओं के अलावा, हिंदू राजाओं ने भी न्याय की प्रशंसा की है।'' शेरशाह ने केवल अपराधों के विरुद्ध न्याय-निर्णय ही नहीं दिये; वरन् उसके अलावा, उसने सामाजिक न्याय-भावना तथा सहिष्णुता भी बतायी।

शेरशाह बहुत बुद्धिमान तथा न्याय परायण शासक भी है। वह प्रजावत्सल भी था। उसने डाक विभाग का भी संगठन किया; साथ ही, विभिन्न प्रांतों की हलचलें जानने के लिए, संवाद-वाहक भी नियुक्त किये।

दुर्भाग्य से वह शीघ्र ही मर गया। उसका राजवंश अधिक दिनों तक नहीं चला। प्रांतीय शासक फिर से स्वतंत्र होने लगे। इस अराजकता से फ़ायदा उठाकर, हुमायूं ने ईरान में संगठित सैन्य की सहायता से दिल्ली को फिर से जीत लिया।

हुमायूं दीर्घकाल तक ईरान में रहा था। वहां उसके सामंत भी गये थे। अब वह वहां से लौटा तो ईरानी सेना और सामंत दोनों लेता आया। फलतः हुमायूं के शासन-पद पर योग्य ईरानियों की नियुक्ति हुई। दरबार में ईरानी संस्कृति का प्रभाव बढ़ता गया।

बाबर और हुमायूं दोनों ज्ञान-प्रेमी थे। बाबर ने अपना आत्मचरित लिखा है। उसने केवल अपने गुणों का ही नहीं, दोषों तक का उल्लेख किया है। वह मुख्यतः सैनिक था। वह कुशल प्रबंधक प्रतीत नहीं होता था। उसका पुत्र हुमायूं भी शूरवीर था। गणित, फलित, ज्योतिष और भूगोल का वह प्रेमी था। फिर भी वह एक विशेष अर्थ में अभागा था, उसके भाइयों ने, जो बड़े-बड़े सूबेदार थे, संकट में उसकी कोई मदद नहीं की। सिवाय इसके वह अफ़ीम भी खाता था। हुमायूं जब अपने पुत्र अकबर को छोड़कर मरा उस समय पूरा साम्राज्य असुरक्षित था।

अकबर महान

मुग़ल अभ्युदय के पूर्व ही भारत के ग्रामों और नगरों में हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक सामंजस्य का वातावरण बन गया था। इस सांस्कृतिक प्रवृत्ति को अकबर ने राजनैतिक रूप दिया तथा राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना की। एक ओर राजपूतों ने मुग़ल आधिपत्य स्वीकार कर लिया, तो दूसरी ओर मग़ल शासन के प्रधान शक्तिशाली पदों पर आसन जमाकर उन्होंने मुग़ल साम्राज्य की वृद्धि की। मुग़ल साम्राज्य की रक्षा तथा प्रसार का दायित्व बहुत कुछ राजपूतों पर आ गया था। शक्तिशाली मुग़ल साम्राज्य का वज़ीर-ए-आज़म टोडरमल हुआ। इस प्रकार, इस साम्राज्य के विकास और प्रसार का श्रेय हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को है। जिस महान् व्यक्तित्व ने यह घटित करके बता दिया उसका नाम भारत के महान् शासकों में गिना जाता है।

भारत के सर्वश्रेष्ठ सम्राटों में अकबर की गिनती होती है। मुग़ल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर ही माना जाता है।

हुमायूं अकबर के लिए जब राज्य छोड़कर मरा तब पूरी मुग़ल सल्तनत असुरक्षित थी। दिल्ली के अधिकार से वंचित अफ़ग़ान राजवंश सूरवंश के उत्तराधिकारी आदिल शाह सूरी के हिंदू प्रधानमंत्री हेमू ने सन् 1556 में दिल्ली पर हमला किया। यह हमला उसी सन् में हुआ जिस सन् में हुमायूं की मृत्यु हुई और अकबर गद्दी पर बैठा। उस समय अकबर की आयु केवल 14 वर्ष की थी। किंतु, पिता के साथ उसका जो पिछला जीवन बीता था, उसमें उसे युद्ध का पर्याप्त अनुभव हो चुका था। उसके सौभाग्य से, बैरम खां नामक एक कठोर हृदय वीर पुरुष मुग़ल सेना का अध्यक्ष था। उसने, बग़ैर अकबर से पूछे, मुग़ल सेनाओं के उन प्रमुखों का, जिन्होंने शत्रु का सतर्कतापूर्वक प्रतिरोध नहीं किया था, सर अलग कर दिया। इसके फलस्वरूप, बैरम खां का आतंक छा गया। पानीपत की लड़ाई में, जो 15 नवम्बर सन् 1556 में हुई, हेमू की सेना को नष्ट कर दिया गया। हेमू की मृत्यु के बाद, अगले चार साल तक बैरम खां ही प्रधानमंत्री का काम करता था।

बैरम खां स्वामिभक्त किंतु कठोर-हृदय और ज़िद्दी आदमी था। इधर, अकबर ने होश संभाला, उसकी नीति कुछ और थी। फलतः, अकबर और बैरम में मतभेद हुए। बैरम को निकाल दिया गया। उसका अंत बहुत दुखदायक हुआ।

अकबर के सामने एकदम कई सवाल थे। शेरशाह सूरी के सुप्रबंध की जो कीर्ति थी वह उसने सुन रक्खी थी। साथ ही, साम्राज्य के कौन शत्रु थे, वह उन्हें अच्छी तरह जानता था। वे दो थे-एक, स्वतंत्र अफ़ग़ान जो भारत में फैले हुए थे। दूसरे, राजपूत। परिस्थिति का उसने सही-सही विश्लेषण किया था। उसे मालूम था कि बादशाह के कमज़ोर होते ही तरह-तरह के षड्यंत्र और विद्रोह होने लगते हैं। सन् 1560 से 1566 तक उसे उनका अनुभव भी हो गया।

अफ़ग़ानों और मुग़लों का धर्म एक था। किंतु, वहां राजनैतिक स्वार्थों की टकराहट थी। राजपूत विधर्मी थे, किंतु, उनके नैतिक सद्गुणों के संबंध में उसने अपने पिता से बहुत कुछ सुन रखा था। वे वीर थे, साहसशील थे, ईमानदार थे, और स्वामिभक्त थे। ये उनके जातीय गुण थे। साथ ही वे कट्टर धर्माभिमानी भी थे। अफ़ग़ानों और राजपूतों की तुलना करने के बाद, अकबर ने दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तापूर्वक हिंदुओं को अपनी ओर मिलाने का निर्णय किया।

अकबर ने भारत में मुग़ल शासन की स्थापना करने के लिए, राजपूतों के सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया। उनसे विवाह-संबंध स्थापित किये। सबसे पूर्व जयपुर के राजा भागमल ने अपनी कन्या का विवाह अकबर के साथ कर दिया। इसके बाद, अनेक राजाओं ने अकबर के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये। अकबर ने इन राजाओं को मुग़ल साम्राज्य में ऊंचे-ऊंचे पद प्रदान किये और उनकी सेवाओं की सहायता से भारत के बड़े भाग की विजय की।

उधर राजपूतों की ही सहायता से उसने रणथम्भौर, चित्तौड़, गौड़वाना, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, अहमदनगर, काश्मीर, सिंध, काबुल और बलूचिस्तान को अपने कब्ज़े में लिया। उसके प्रतिरोधियों में दो मुख्य हैं- एक चित्तौड़ के महाराणा प्रताप, दूसरे गोंडवाने की रानी दुर्गावती।

राणा प्रताप

राणा प्रताप एक शूरवीर योद्धा था। वह प्रचंड धर्माभिमानी था। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की तथा राजपूतों की पुरानी परंपरा को जारी रखा। जब चित्तौड़ छिन गया तो उसने जंगल में शरण ली। वहां से राणाप्रताप ने अकबर के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।

जिन हिंदू राजाओं ने वीरतापूर्वक अकबर की शक्ति का प्रतिरोध किया उनमें मध्य प्रदेश के गढ़ामंडला की रानी दुर्गावती उल्लेखनीय हैं। वह अकबर की सेनाओं से लड़ते-लड़ते मारी गयीं।

राजपूत राजाओं ने एक मुस्लिम सम्राट को अपनी कन्याएं प्रदान करना क्यों स्वीकार किया? इसका उत्तर अपनी-अपनी

मनोवृत्तियों के अनुसार ही अब तक दिया गया है। किंतु, यदि हम पूरे भारतवर्ष में फैले हुए उस सांस्कृतिक वातावरण को ध्यान में रखें, जिसमें हिंदू और मुस्लिम दोनों प्रकार की रूढ़ियों की भर्त्सना की जा रही थी- साधारण पुरुषों के द्वारा नहीं, वरन् असाधारण पुरुषों के द्वारा, ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने मानव-मात्र के सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिए देश में अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया था, तो हमारे लिए यह सोचना सहज ही हो जाता है कि राजपूत राजाओं ने देश के तत्कालीन वातावरण को देखकर ही यह क़दम उठाया। किंतु किसी ब्राह्मण पुरोहित का यह साहस नहीं था कि वह इन राजपूतों को जात से बाहर निकाले। वे इस बात को सहने के लिए तो तैयार थे कि अपने समाज का कोई पुरुष (या स्त्री) अन्य धर्मावलंबी हो जाए; किंतु इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि अन्य धर्म की कोई स्त्री या पुरुष हिंदू समाज में ले लिया जाए। यही कारण है कि उन हिंदुओं को, जिन्होंने मुस्लिम स्त्रियों से संबंध रखा, रूढ़िवादियों द्वारा तरह-तरह के कष्ट दिये गये।

प्रसिद्ध पंडितराज जगन्नाथ की स्त्री यवनी थी। रूढ़िवादियों ने उन्हें बहुत अधिक कष्ट दिया। एक कथा के अनुसार, पंडितराज (तथा उनकी यवनी स्त्री) ने गंगा-लहरी स्रोत पढ़ते-पढ़ते गंगा की धारा में अपने प्राण विसर्जित किये। रूढ़िवादी समाज का क्रोध इसलिए था कि उसने अन्य धर्मावलंबी स्त्री को अपने घर में स्थान दिया। (यह शाहजहां के ज़माने की बात है)।

स्वयं अकबर कट्टर मुसलमान न था। बचपने में मुल्लाओं द्वारा उसकी शिक्षा न हो पायी थी। प्रखर-बुद्धि होने के अतिरिक्त वह जिज्ञासु भी था। वह ईरान रह आया था। ईरान के मुसलमान शिया मत के थे। अकबर के दरबार में उच्च पदों पर शिया लोग मौजूद थे। धार्मिक मतभेदों से वह खूब परिचित था। उसने फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना (आराधना-गृह) बनवाया। यहां वह मुल्लाओं और मौलवियों का, धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद सुनता। बाद में, इस इबादतखाने में वह विभिन्न धर्मों के आचार्यों को भी बुलाने लगा। अब इन सबके बीच, वाद-विवाद होने लगे। अकबर अपने विद्वान मित्र अबुल फ़ज़ल तथा अबुल फ़ैज़ी समेत, यह वाद-विवाद सुनता; और जितना गुनना होता, गुन लेता।

मुल्लाओं और मौलवियों ने एक बार 'विवाह' इस प्रश्न पर बहस छेड़ी। अंत में, यह तै नहीं हो पाया कि एक मुसलमान को कितने विवाह करने का अधिकार है। इस मसले पर अंतिम निर्णय नहीं हो सका। तब मुल्लाओं ने अकबर ही से प्रार्थना की कि वह स्वयं इस झगड़े का तस्फ़िया करे (अकबर ने न मालूम कितने ही विवाह किये थे)।

अकबर ने मुल्लाओं द्वारा की गयी इस प्रार्थना का तुरंत ही राजनैतिक लाभ उठा लिया। उसने एक कागज़ पर लिखवा लिया कि धर्म-संबंधी मामलों में अंतिम निर्णय देने का अधिकार मात्र सम्राट को है, न कि मुल्लाओं और मौलवियों को। जितने भी उपस्थित मुल्ला और मौलवी थे उन सबके दस्तख़त उस पर ले लिये। परिणाम यह हुआ कि अकबर ने धर्म की शक्ति भी अर्जित कर ली।

इस इबादतगाह में प्रत्येक गुरुवार को सभा होती थी, जिसमें हिंदू, जैन, पारसी, यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के दो पंथ शिया और सुन्नी आदि विविध संप्रदायों और मार्गों के विद्वान उपस्थित होते थे। सम्राट अकबर के सामने हिंदू धर्म की व्याख्या करने वालों में पुरुषोत्तम तथा देवी नामक दो ब्राह्मण अधिक उल्लेखनीय हैं। देवी नामक ब्राह्मण ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इस त्रिदेव के अतिरिक्त, राम और कृष्ण जैसे अवतार, और साथ ही देवी महामाया के पीछे जो आध्यात्मिक तथा दार्शनिक भावनाएं और धारणाएं हैं, उनकी विवेचना की। उसने अकबर को हिन्दू धर्म का उपदेश दिया। अकबर उस ब्राह्मण से बहुधा धर्म-चर्चा किया करता था। उसी प्रकार जैन मुनि हरि विजय सूरि, जिनचंद्र, भानुचंद उपाध्याय तथा मुनिराज विजय सेन सूरि अकबर के सामने जैन धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डालते थे। सन् 1579 के बाद, एक-न-एक जैन मुनि बादशाह के दरबार में रहा आया। उन्हीं के धर्मोपदेशों का प्रभाव था कि अकबर ने कुछ निश्चित तिथियों पर पशुवध बंद करा दिया था।

अकबर ने पारसियों द्वारा प्राचीन ईरानी धर्म पर प्रवचन सुना। पारसी धर्मोपदेशक दस्तूर मेहरजी राणा ने अकबर को अपने धर्म की बहुत-सी बातें बतायीं, जिससे प्रभावित होकर अकबर ने सूर्य की पूजा आरंभ कर दी। सूर्य ईरानियों के आराध्य-देवता अग्नि ही का तो प्रतीक है। सिख धर्म के प्रति तो अकबर की अपार श्रद्धा थी। उस धर्म ने हिंदुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया था।

ईसाई धर्म से परिचय प्राप्त करने के लिए अकबर ने गोवा के पुर्तगीज़ पादरियों से संपर्क स्थापित किया। उन्हें अपनी राजसभा में बुलाया। किंतु, पुर्तगीज़ पादरियों ने मुहम्मद साहब और कुरआन पर तरह-तरह के आक्षेप शुरू किये। परिणाम यह हुआ कि ईसाई मज़हब से बहुत-से मुसलमान नाराज़ हो गये।

दीन-इलाही

अनेकानेक धर्मों को ध्यान में रखकर, अकबर ने सोचा कि एक ऐसे धर्म का विकास हो जिसमें सारे धर्मों के सार-तत्व समा जाएं। इसलिए, उसने दीन-इलाही नामक धर्म चलाया। इस धर्म का सिद्धांत यह है कि ईश्वर एक है, अकबर उसका दूत है, मनुष्य का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने विवेक से सत्य और असत्य का निर्णय करे। दीन-इलाही में किसी व्यक्ति या बात पर अंधविश्वास के विरुद्ध चेतावनी दी गयी है। अंधविश्वास का स्थान-स्थान पर विरोध करते हुए, स्वतंत्र बुद्धि पर ज़ोर दिया गया है। दीन-इलाही में पशु हिंसा को पाप समझा गया, मांस-भक्षण का निषेध किया गया। अकबर के अंतःकरण में निःसन्देह एक स्वतंत्र शोध-बुद्धि थी।

अकबर सुबह उठते ही सबसे पहले उगते हुए सूर्य को नमस्कार करता, और उसमें यह अनुभूति उत्पन्न होती कि ईश्वरीय तेज का प्रकट रूप अग्नि है। वह अग्नि को भी दिव्य शक्ति का प्रतीक मानता।

बहुत-से लोग, जो उसके दरबार में उठते-बैठते थे, दीन-इलाही के अनुयायी हो गये। उनमें हिंदू और मुसलमान दोनों शामिल थे। यह सच है कि सम्राट को प्रसन्न करने के लिए, उन्होंने दीन-इलाही स्वीकार किया। यह धर्म चला नहीं। किंतु, उससे तत्कालीन युग की धार्मिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है।

ऐसे मुसलमान को अगर राजपूत राजाओं ने अपनी कन्याएं दीं तो इसमें उन्होंने, जाने या अनजाने, एक महत्वपूर्ण कार्य किया। भारत की तत्कालीन समाज-सामंजस्य-प्रधान, मानवतावादी वृत्तियों को ही उन्होंने प्रोत्साहन दिया, भले ही उन्होंने वैसा किसी राजनैतिक हेतु से किया हो।

अकबर की स्वतंत्र बुद्धि के विकास में उसकी हिंदू रानियों का हाथ था; साथ ही शेख़ मुबारक जैसे सूफ़ियों का भी योगदान था। शेख़ मुबारक के दो पुत्र अबुल फ़जल और अबुल फ़ैजी के विचारों का अकबर के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा।

हिंदू स्त्रियों से विवाह करके उसने मुग़ल राजवंश को भारतीय बनाना चाहा। शासक-वर्ग में हिंदू रक्त प्रवाहित किया। यदि हम उस युग के रूढ़िवाद को देखें - चाहे वह हिंदू रूढ़िवाद हो, चाहे मुस्लिम - तो हमें यह महसूस होगा कि अकबर का यह क़दम क्रांतिकारी था। क्रांतिकारी इसलिए कि भले ही हिंदुओं ने अपनी कन्याएं देकर उन कन्याओं को मुस्लिम धर्म के हवाले कर दिया हो, किंतु अकबर ने उन हिंदू कन्याओं को मुसलमान नहीं बनाया, उन्हें इस्लाम क़ुबूल करने के लिए नहीं कहा। मुसलमान मुल्लाओं और ब्राह्मण पुरोहितों - दोनों को यह एक बड़ी चुनौती थी।

अपनी हिंदू रानियों के लिए उसने, उनके क़िले के भीतर ही, तुलसी-तरु, मंदिर आदि की व्यवस्था की। यहां तक कि क़िले के अंदर हिंदू रानियों के निवास-स्थान की स्थापत्य कला भी हिंदू हो जाती है, मेहराबें और कमानियां, गवाक्ष (झरोखे) और द्वार हिंदू रूप धारण कर लेते हैं। अपनी हिंदू रानियों को प्रसन्न करने के लिए, साथ ही अपनी हिंदू प्रजा के निकटतर आने के लिए, अकबर स्वयं हिंदू पोशाक धारण करता, तिलक लगाता और माला फेरता।

ध्यान में रखने की बात है कि अकबर ने जिन प्रांतीय मुस्लिम राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था, उन राज्यों में हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक मैत्री घनिष्ठ हो चुकी थी। हिंदुओं और मुसलमानों में आत्मीय संबंध स्थापित हो चुके थे।

इन्हीं मुस्लिम राज्यों में हिन्दुओं का सर्वाधिक उत्कर्ष हुआ था। साथ ही, शेरशाह सूरी ने अल्पकाल में ही धार्मिक सहिष्णुता का तथा प्रजावत्सलता का परिचय दिया था। उधर, भक्ति-आंदोलन के फलस्वरूप, समाज में आध्यात्मिक मानवतावाद का वातावरण उत्पन्न हो चुका था।

अकबर ने इसी परंपरा को कई क़दम आगे बढ़ाना चाहा। उसके मत-विश्वास, धार्मिक संकीर्णता से विकृत नहीं हुए थे। वह खुद बेपढ़ा-लिखा था किंतु, वह उदार चिंतकों, बुद्धिमान तार्किकों, फ़ारसी तथा हिंदी के कवियों और हंसोड़ किंतु तेजस्वी बुद्धि वाले मित्रों में उठता-बैठता था। उसका परिणाम यह हुआ कि उसने तत्कालीन सामंजस्य और समन्वय की भावना को, सामाजिक और राजनैतिक वस्तुस्थिति में परिणित करना चाहा।

इन विवाह-संबंधों के फलस्वरूप ख़ास मुसलमानों के केंद्रीय स्थानों में हिंदुओं का प्रवेश हुआ; दुर्ग के भीतर अंतःपुर में हिंदू सभ्यता और संस्कृति के छोटे-छोटे केंद्र बन गये। राजपूत राजाओं को शासन के सर्वोच्च पदों पर नियुक्त करके, उसने मुग़ल शासन-यंत्र में हिंदुओं के प्रभाव विस्तार को प्रोत्साहन दिया। राजा टोडरमल सरीखे कार्य-दक्ष पुरुष को माल महकमा सौंपा गया। उसने शेरशाह सूरी के भूमि सुधारों को इधर-उधर परिवर्धित करके साम्राज्य भर में लागू किया। हिंदुओं पर अकबर ने विश्वास किया, उन्हें अपने विश्वास में लिया। साम्राज्य की रक्षा का बहुत कुछ भार उसने उन्हीं पर डाल दिया। उत्तर-पश्चिम के बड़े-बड़े युद्ध अब राजपूतों की बहादुरी से लड़े जाने लगे। साथ ही, राजपूत राजाओं के राज्य को उसने क़ायम रहने दिया।

वह जानता था कि भारत में बहुसंख्यक हिंदू ही हैं। उनका विश्वास प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक था। प्रांतीय मुस्लिम राज्य पहले ही से यह विश्वास प्राप्त कर चुके थे। उसने इस राजनैतिक प्रवृत्ति-प्रक्रिया को आगे बढ़ाया।

फलतः, वह सही मानी में राष्ट्रीय राजतंत्र का संस्थापक था। तत्कालीन सामंजस्यवादी वातावरण को उसने पूरे भारत में राजनैतिक रूप प्रदान किया; और इस प्रकार पहली बार भारत में राष्ट्रीय साम्राज्य का उदय हुआ! हम उसे राष्ट्रीय राजतंत्र क्यों कहते हैं? इसलिए कहते हैं कि इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार राजा केवल मुसलमानों का राजा होता है। इस्लाम में राज्य-संचालन के भी सिद्धान्त हैं। ग़ैर-मुस्लिमों की सत्ता तो मुस्लिम राज्य स्वीकार नहीं करता, उनकी जान-माल की रक्षा के बदले उनसे विशेष कर वसूल किया जाता है। यह कर जज़िया कहलाता है। इस प्रकार, समाज दो भागों में विभक्त हो जाता है - एक मुस्लिम, दूसरा गैर - मुस्लिम!

राष्ट्रीय राजतंत्र

अकबर ने हिंदुओं पर से जज़िया कर उठा दिया। इस प्रकार, नागरिकों की दो सामाजिक-राजनैतिक कोटियों को समाप्त कर दिया। अब सम्राट के सामने हिंदू-मुस्लिम दोनों की स्थिति एक समान थी; सिर्फ मुस्लिम होने के नाते, कोई नागरिक बड़ा नहीं हो सकता - सरकार की आंखों में - इसलिए इस शासन को राष्ट्रीय शासन कहा जाता है। किंतु, केवल इसी आधार पर तत्कालीन राजतंत्र को राष्ट्रीय शासन कहना ठीक नहीं; वह 'राष्ट्रीय' राजतंत्र इसलिए भी था कि उसमें भारतीय जनता की महत्वपूर्ण तथा प्रधान प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व होता था। वह प्रधान प्रवृत्ति थी - विभिन्न धर्मों और धर्मानुयायियों के बीच सामंजस्य तथा समन्वय की भावना तथा भारतीय जनता में उस भावना का वातावरण।

राष्ट्रीय राजतंत्र होते हुए भी, वह आधुनिक ढंग का राष्ट्रवादी राजतंत्र नहीं था। किंतु, उसने जातीय ऐक्य के क्षेत्र में आधुनिक राष्ट्रवादी युग से अधिक सफलता प्राप्त की थी। उस राष्ट्रीय राजतंत्र के फलस्वरूप समाज - सामंजस्य का कार्य और भी आगे बढ़ा।

ऐसी स्थिति में अगर राजस्थान के राजपूत राज्य अकबर से न केवल प्रसन्न हों, वरन मुग़ल साम्राज्य के उच्च पदाधिकारी बनने में गौरव और प्रतिष्ठा का अनुभव करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सूबेदार और सेनापति, सरदार और मनसबदार बनकर, मुग़ल साम्राज्य के वास्तविक संरक्षण का कार्य उनके हाथ में आ गया था। वे यह खूब समझते थे कि साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि उन्हीं के सहयोग पर निर्भर है।

जज़िया कर उठाने के अतिरिक्त, अकबर ने काशी, प्रयाग,

अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा आदि हिंदु तीर्थों की यात्रा करने वालों पर जो टैक्स लगाया जाता था, वह भी उठा लिया। जज़िया और तीर्थ-यात्रा कर उठा लेने का ऐतिहासिक राजनैतिक महत्व है। इस क़दम से राज्य का स्वरूप बदल गया। तुर्क-अफ़गान युग में, राज्य था - एक विशेष धर्म और उसके अनुयायियों का, किंतु अब वह सब जातियों और धर्मों का सम्मिलित शासन था। इस अर्थ में अकबर ने भारत में राष्ट्रीय राजतंत्र का निर्माण किया।

इस अखिल भारतीय मुग़ल सत्ता का प्रधानमंत्री - वज़ीरे आज़म - राजा टोडरमल था। वह खत्री था। क्रमशः वह पदोन्नति पाता गया, और अंत में प्रधानमंत्री बन गया। उसके हाथ में वित्त तथा भूमि - व्यवस्था का भी कार्य था।

उसके सर्वोच्च सेनाध्यक्ष थे - राजा मानसिंह और राजा भगवानदास। अफ़ग़ानिस्तान जैसे मुस्लिम प्रदेश का शासन राजा मानसिंह के हाथ में था। उसी प्रकार बंगाल तथा अन्य प्रदेश के सर्वोच्च शासक भी राजपूत ही थे।

किंतु ध्यान रहे वह सामंत सभ्यता, सामंती समाज - व्यवस्था थी। उस व्यवस्था में आधुनिक प्रकार के राष्ट्रवाद की गुंजाइश नहीं थी। स्वयं प्रजा अपने राजा को अर्थात् अकबर को ईश्वर का अंश मानने लगी थी। वह अब न केवल मुसलमानों का 'खलीफ़ा' हो उठा, वरन् उसने अब प्रजा की संतुष्टि के लिए 'जगद्गुरु' की उपाधि भी धारण कर ली। लोगों में यह भावना हो उठी कि जिस प्रकार प्रातः काल सूर्य के दर्शन किये जाते हैं उसी प्रकार सुबह उठकर सम्राट के दर्शन होना चाहिए। लोग इसे अपना पुण्य कर्तव्य समझते।

बहुत से लोग दुर्ग के झरोखे के नीचे, मैदान में सम्राट के दर्शन के लिए एकत्र होते। अकबर स्वयं अपने राज-प्रासाद के खुले गवाक्ष में, सूर्योदय के दो घड़ी बाद, जनता को दर्शन देता।

अकबर के समय ऐसा संप्रदाय ही उत्पन्न हो गया था जो सम्राट के दर्शन के बिना भोजन ग्रहण नहीं करता था, न पानी ही पीता था। इस संप्रदाय को 'दर्शनिया' संप्रदाय कहते थे। सच बात तो यह थी कि भारत की भावुक जनता ने सम्राट के अतुल्य प्रताप को देखकर उनमें देवत्व की भावना कर ली थी। यहां तक कि आगे चलकर जहांगीर और शाहजहां अपने को 'ईश्वरीय' अंश मानने लगे थे - जहांगीर की रानी नूरजहां ने 'जगत्-गुसांइनी' की उपाधि धारण कर ली थी।

वह सामंत सभ्यता, सामंती समाज - व्यवस्था थी। उसके अंतर्गत, सम्राट सर्वोच्च पुरुष थे, सारे राजनैतिक अधिकार उसके पास थे। वह निरंकुश, स्वेच्छाचारी, सार्वभौम अधिपति था।

जिस प्रकार अफ़ग़ान-युग में 'सत्य-पीर' नामक संप्रदाय का उदय हुआ - जिसमें हिंदू और मुस्लिम दोनों का सामंजस्य किया गया था, उसी प्रकार मुग़ल-काल में सतनामी और नारायणी संप्रदाय उत्पन्न हुए। नारायणी संप्रदाय में हिंदू और मुस्लिम दोनों थे। वे पूर्व की ओर मुंह किये दिन में पांच बार प्रार्थना करते। ईश्वर के अनेक नामों में 'अल्लाह' का भी समावेश करते थे। मुर्दों को जलाने के बजाय, ज़मीन में गाड़ते थे।

इस युग की समन्वय-सामंजस्य भावना का मूर्त प्रतीक है - एक साधक, जिसका नाम था प्राणनाथ। प्राणनाथ के अनुयायी दोनों थे - हिंदू और मुसलमान। महत्व की बात यह है कि उसके संप्रदाय में दीक्षित होने के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों को एक ही पंगत में भोजन के लिए बैठना पड़ता था। प्राणनाथ कहता था-'सबका धर्म और ईमान एक होना चाहिए।' उसने मूर्ति-पूजा, जातिवाद और ब्राह्मण-प्रभुत्व के विरुद्ध एक आंदोलन ही खड़ा कर दिया था।

उधर अकबर स्वयं ख़लीफा हो उठा था। उसने सन् 1580 ई. में नमाज़ में हजरत मुहमद साहब का उल्लेख करने की मनाही कर दी। रमज़ान के महीने के उपवास का भी उसने निषेध किया। बादशाह के सामने सिज्दा (दंडवत) करने का हुक्म दिया। गो-हत्या बंद कर दी।

समाज-सुधार

अकबर ने नवजात बालिकाओं की हत्या का रिवाज़ बंद कर दिया। सती-प्रथा पर भी रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्वेच्छा से तो कोई स्त्री सती हो सकती थी, किंतु उस पर ज़बर्दस्ती नहीं की जा सकती थी। राजा भगवान दास के एक संबंधी की स्त्री को जब ज़बर्दस्ती सती बनाया जाने लगा, तुरंत ही उसने एक अश्वारोही दल भिजवाकर उसे रुकवा दिया।

अकबर का नाम लेते ही हमारे सामने ये व्यक्ति आते हैं-राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, अबुल फ़जल, अबुल फ़ैज़ी और निज़ामुद्दीन। उसके दरबारियों में ये सर्वश्रेष्ठ थे। इसके अतिरिक्त उसका परम सखा था - बीरबल। प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन उसका दरबारी था, और साथ-ही-साथ इतिहास-लेखक बदायूंनी का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता।

अकबर की नीति के तीन मुख्य सिद्धांत थे :

(अ) राज्य-व्यवस्था को किसी एक ही धर्म या जाति के एकाधिकार में न रखना। एक ही धर्म या जाति की शक्ति के आधार पर राज्य-व्यवस्था खड़ी न करना अर्थात् राजतंत्र को राष्ट्रीय स्वरूप देना और उसका निर्वाह करना।

(ब) हिंदुओं की सहानुभूति, समर्थन और सहयोग प्राप्त करना।

(स) संपूर्ण भारत पर साम्राज्य स्थापित करके उसे एक राजनैतिक इकाई बना देना।

समाप्त

साभार : मुक्तिबोध रचनावली, भाग 6

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904,
ईमेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए